ISSN : 2321-3922
जनवरी - 2026
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-13 अंक-44
Regd. No. PT/105/BGP-13/2027

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च 2026

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

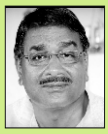

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :

श्री दयानन्द जायसवाल

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–13 अंक 44

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
जनवरी–मार्च 2026

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल 2026 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

क्रमांक		विषय	लेखक के नाम	पृष्ठांक
1,	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
2,	समीक्षा	लोकजीवन के संघर्ष और विडम्बनाओं की कहानियाँ–	शशिभूषण बडौनी	6
3,	समीक्षा	खैबर दर्रा (कहानी संग्रह)	डॉ मधु संधु	7
4,	समीक्षा	कविताओं में अन्तस् की सुगंध	डॉ विजय मिश्र	9
5,	समीक्षा	सुनो गंडक की आत्मिक और आत्मीय प्रेम कविताएँ	विजय कुमार तिवारी	10
6,	समीक्षा	अब मैं बोलूँगी–एक खरी और एक जरुरी किताब	शैल बक्षी खड़कोतकर	13
7,	समीक्षा	तेजनारायण राव की कविताओं में गाँव की पगडंडियाँ	डॉ अशोक सिंह	14
8,	समीक्षा	उम्मीद की तरह लौटना तुम	विभा कानन	15
9,	समीक्षा	जाना है समय के पार	उषा पांडेय अकनक	16
10,	समीक्षा	कार में खरोंच (व्यंग्य संग्रह)	दयानन्द जायसवाल	18
11,	समीक्षा	बच गई चिड़ियां (गीत संग्रह)	दयानन्द जायसवाल	19
12,	समीक्षा	किरण कोहरा (कविता संग्रह)	रवि कुमार	52
13	आलेख	इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी	गौरी शंकर वैश्य	20
14	जीवनी साहित्य	सर्जक और सर्जना के पक्षधर	अश्विनी कुमार दुबे	22
15	आलेख	रामचरितमानस में दूत एवं गुप्तचर प्रणाली	डॉ अमर सिंह बधान	26
16	आलेख	शिक्षा में प्रेय और क्षेम का समन्वय	डॉ पशुपतिनाथ उपाध्याय	31
17	कहानी	सौतेला भाई	मनोरंजन सहाय	34
18	रेखाचित्र	महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	40
19	आलेख	फेसबुकिया क्रांतिवीर	डॉ अवधेश कुमार चंदसौलिया	43
20	यात्रावृत्तांत	माझूली	सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	45
21	लघुकथा	धारणा	प्रिया देवांगन 'प्रियु'	30
22	लघुकथा	व्यष्टि में समष्टि	अवधेश तिवारी	33
23	गजलें		नवीन माथुर पंचोली	8
24	कविता	बेटियाँ	मनोज चौहान	8
25	गीत		श्यामसुंदर तिवारी	39
26	कविता	शांत नदी	राज कुमार कुम्भज	39
27	कविताएँ	तुम्हारी याद, घबराना क्या	मीरा सिंह 'मीरा'	44
28	कविताएँ	पहचान, हवा	अशोक गुजराती	51
29	कविता	दिनचर्या	श्रीगोपाल नारसन	52
30	कविता	फिर जलाओ रावण को	विष्णु कुमार नन्हें	52

सपने बुनना सीख लो

बैठ जाओ सपनों के नाव में,
मौके की ना तलाश करो।
खुद ही थाम लो हाथों में पतवार,
माझी का ना इंतजार करो।
पलट सकती है नाव की तकदीर,
गोते खाना सीख लो।
अब नदी के साथ बहना सीख लो,
डूबना नहीं, तैरना सीख लो।
भंवर में फंसी सपनों की नाव,
अब पतवार चलाना सीख लो।
खुद ही राह बनाना सीख लो,
अपने दम पर कुछ करना सीख लो।
तेज नहीं तो धीरे चलना सीख लो,
भय के भ्रम से लड़ना सीख लो।
कुछ पल भंवर से लड़ना सीख लो,
समंदर में विजय की पताका
लहराना सीख लो,
सपने बुनना सीख लो।।

नरेंद्र वर्मा

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

वैश्विक साहित्य साहित्यिक परंपरा और प्रतिनिधित्व की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देता है, उन विविध आवाजों को प्राथमिकता देता है जिन्हें अक्सर मुख्य धारा की कथाओं से हाशिए पर रखा गया है या बाहर रखा गया है। यह सवाल उठाता है कि कहानियाँ सुनाने का अधिकार किसे है और किन अनुभवों को मान्यता के योग्य माना जाता है। विभिन्न संस्कृतियों के व्यापक दृष्टिकोणों को शामिल करके, वैश्विक साहित्य साहित्यिक परंपरा को पश्चिमी–केंद्रित विचारों से परे विस्तारित करता है, पाठकों को पूर्वाग्रहों का सामना करने और वैश्वीकृत दुनिया में पहचान की जटिलताओं पर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह बदलाव न केवल साहित्यिक विमर्श को समृद्ध करता है, बल्कि 'महान' साहित्य की परिभाषा का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए भी प्रेरित करता है। वैश्विक साहित्य से तात्पर्य उन साहित्यिक कृतियों से है जो राष्ट्रीय और सांस्कृतिक सीमाओं से परे जाकर विश्वभर के विविध अनुभवों और दृष्टिकोणों को प्रतिबिंबित करती हैं। यह शब्द साहित्य की परस्पर संबद्धता को उजागर करता है, क्योंकि यह अंतर्राष्ट्रीयता और वैश्वीकरण के विषयों पर प्रकाश डालता है, और दर्शाता है कि कैसे कहानियाँ विभिन्न संस्कृतियों में प्रासंगिक बनी रह सकती हैं, साथ ही सार्वभौमिक मानवीय परिस्थितियों को भी संबोधित करती हैं।

साहित्य अपने ज्ञानामृत से समाज और संस्कृति को एक सार्थक दिशा देने का सशक्त पर्याय है। साहित्य जब पवित्र गंगा जैसी बहती है, तो समस्त जन इससे लाभान्वित होते हैं और यह मानव की बुद्धि और आत्मा को निर्मल करती है। किसी भी काल के साहित्यिक अध्ययन से हम तत्कालीन मानव–जीवन के रहन–सहन व अन्य गतिविधियों को आसानी से जान सकते हैं। आदिकाल से लेकर अब तक साहित्य ने मनुष्य–जीवन को सदैव ही प्रभावित किया है। साहित्य मानव जीवन के उत्थान व चारित्रिक विकास में निरंतर सहायक होता है। साहित्य से मानव मस्तिष्क, मजबूत बनता है, साथ ही वह उन नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में उतार सकता है, जो उसे महानता की ओर ले जाते हैं। यह साहित्य की ही अद्‌भुत व महान् शक्ति है जिससे समय–समय पर मनुष्य के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। साहित्य ने मनुष्य की विचारधारा को एक नई दिशा प्रदान की है। दूसरे शब्दों में मनुष्य की विचारधारा को परिवर्तित करने के लिए साहित्य का ही आश्रय लेना पड़ता है। साहित्य के अध्ययन से आधुनिक युग ही नहीं प्राचीन युग के बारे में अपनी जिज्ञासा को पूर्ण कर सकते हैं। साहित्य अध्ययन से मानव–जीवन संबंधी समस्त जानकारी प्राप्त कर तत्कालीन समाज को समुन्नत बना सकते हैं।

साहित्य मानवीय अनुभव और मानवीय स्थिति को प्रतिबिंबित करता है, और यही कारण है कि यह कई विषयों के लिए एक बहुत ही मूल्यवान शिक्षण उपकरण है। भाषा का सावधानीपूर्वक चयन करके और साहित्य के किसी अंश के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया विकसित करके, ''हम अपने छात्रों को दूसरों की दृष्टि से मानवीय अनुभवों की दुनिया का अन्वेषण करने की अनुमति दे रहे हैं।'' भावनात्मक समझ विकसित करके, हम न केवल सहानुभूति विकसित कर रहे हैं, बल्कि इसका उपयोग समाज में परिवर्तन और सुधार लाने के लिए भी कर रहे हैं। इसलिए साहित्य हमें केवल वही जानकारी नहीं देता जो हम पहले से जानते हैं। यह वास्तव में हमारी समझ को उन तरीकों से विस्तृत कर सकता है जो समझने के अन्य तरीके नहीं कर सकते।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। मानव डिजिटल युग में निवास कर रहा है। किसी काम का विलंब उसे कतई पसंद नहीं है। पलक झपकते ही काम को निपटाना चाहता है। मानव–जीवन यांत्रिक बनता जा रहा है। मनुष्य मशीनों का आदी बन चुका है। विज्ञान मानव–जीवन को सुविधाएँ प्रदान कर उसे सुखी बनाता है। पर साहित्य मानव–जीवन को सुंदर एवं अनुशासित बनाता है। अर्थात् साहित्य सृजन एवं अध्ययन से मानव में नैतिक मूल्यों की वृद्धि होती है। यही अनुशासन एवं नैतिक मूल्य मनुष्य को सदाचार भरी जिंदगी जीने की राह दिखाती है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जिस तरह संतुलित आहार का होना आवश्यक है, उसी तरह मस्तिष्क के खाद्य के लिए अच्छे साहित्य का अध्ययन भी अत्यंत आवश्यक है। मस्तिष्क का बलवान एवं शक्तिशाली होना अच्छे साहित्य से ही संभव है। मनुष्य में सहृदयता, सद्‌भावना का लोप होता जा रहा है। उसमें कला, संस्कृति और साहित्य के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं है। वह भागदौड़ भरी जिंदगी में पड़कर अपने अंदर छिपी कलात्मकता को भूलता जा रहा है। देश की उन्नति हर हाल में जरूरी है। पर उससे भी ज्यादा जरूरी मानव को स्वस्थ मन की वृद्धि है जो कि सिर्फ अच्छे साहित्य से ही संभव है।

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है, इससे समाज को दिशा–बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ–साथ जीवन–मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है। दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है, वहीं साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिह्नित करता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों को भी साहित्य में स्थान देता है। साहित्यकार से जिन बृहत्तर अथवा गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है, उनका संबंध केवल व्यवस्था के स्थायित्व और व्यवस्था परिवर्तन के नियोजन से ही नहीं है, बल्कि उन आधारभूत मूल्यों से है, जिनसे इनका निर्णय होता है कि वे वांछित दिशाएँ कौन–सी है, और जहाँ इच्छित परिणामों और हितों की टकराहट दिखाई पड़ती है, वहाँ पर मूल्यों का पदानुक्रम कैसे निर्धारित होता है? साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को उद्‌घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ–प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर ही साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से समन्वित होता है। नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाओं के साथ सादर...!

समीक्षा

लोक जीवन के संघर्ष और बिडम्बनाओं की कहानियाँ

शशि भूषण बड़ोनी
देहरादून
मो. 9410550100

सुप्रसिद्ध कथाकर गोविन्द सेन का 'चयनित कहानियाँ' उनकी डेढ़ दर्जन चयनित कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में निमाड़ और मालवा क्षेत्र के लोक–जीवन की विषम परिस्थितियों और अनेक विडम्बनाओं का यथार्थपरक चित्रण है। कथाकार इसी क्षेत्र के निवासी हैं।

इन सभी कहानियों में गाँव–समाज में फैले अंधविश्वास के मनोविज्ञान के भ्रम को उजागर किया गया है, यथा 'घंटी' और 'मसाण' शीर्षक कहानियों में यही कथ्य का विषय है। ये दोनों ही कहानियाँ संप्रेषणीय व पठनीय हैं। इनमें व्यंग्य का पुट कहानियों को रोचकता प्रदान करता है।

इसी प्रकार 'सुखदेव की सुबह' हो या 'लाँबू फोतरूँ' हो या फिर 'चाबी' हो, ये सभी कहानियाँ व्यंग्य के पुट के यथोचित प्रयोग से बहुत पठनीय व रोचक बन गयी हैं।पाठक उत्सुकता से धाराप्रवाह पढ़ता चला जाता है।

'सुखदेव की सुबह' में कहानी नैरेटर प्रातः भ्रमण के लिए बहुत अच्छी मनोस्थिति में निकलता है। वह अपने स्वास्थ्य लाभ हेतु उस वक्त ऐसी नकारात्मक घटनाओं से बचना चाहता है, जिससे अनावश्यक व्यवधान हो, लेकिन उस प्रातः भ्रमण के दौरान उसे एक से बढ़कर एक विडम्बनाजनक स्थितियाँ देखने को मिलती हैं और इस प्रकार पाठक इस रोचक कहानी को उत्सुकता से पढ़ता चला जाता है।

'बरकत' इस संग्रह की बेहतरीन कहानी है। इस कहानी पर कथाकार को एक पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। कहानी वाकई हृदयस्पर्शी है।कहानी में विडम्बनाजनक परिस्थितियों का अच्छा चित्रण है।

कथाकार का अध्यापन ही प्रोफेशन है, अतः कहानियों में अध्यापन, अध्यापक और स्कूल का होना स्वाभाविक है। संग्रह में इसीलिए 'गुमशुदा चाँद की वापसी', 'तोतिया स्कूटर', 'चाबी' और 'इडी' कहानियाँ इन सबका चित्रण करती नजर आती हैं। 'चाबी' कहानी में काम के प्रति उपेक्षा का भाव रखने वाले अध्यापक का चित्रण है। कहानी में उस अध्यापक की गैरशैक्षणिक कामों में रुचि, व्यावसायिक भाव, अध्यापन और स्कूल की व्यवस्थागत विडम्बना का रोचक दृश्यांकन है।

इसी तरह 'इडी' कहानी में स्कूल अध्यापक का एक आदिवासी लड़की से प्रेम हो जाता है, लेकिन वह उससे विवाह करने का इच्छुक नहीं है। वह आदिवासी लड़की अपने तीव्र तेवरों के साथ स्कूल में धमक कर उस अध्यापक को ढूँढती है, लेकिन वह अध्यापक स्कूल से भाग खड़ा होता है।

उसी स्कूल में उस अध्यापक को एक अच्छी पढ़ी–लिखी अध्यापिका से एकतरफा प्रेम हो जाता है और वह उससे विवाह करना चाहता है, लेकिन वह अध्यापिका उसे नहीं चाहती।वह कुछ निर्णय नहीं कर पाता।यह भी एक रोचक पठनीय कहानी है।

इस संग्रह में 'टापू' और 'धूप में पिता' मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण की प्रभावशाली कहानियाँ हैं। इसी प्रकार 'गल्या का सपना' कहानी हाशिए पर खड़े व्यक्ति की उपेक्षा, वेदना, शोषण और दमन की एक अन्य प्रभावशाली और पठनीय कहानी है। उस उपेक्षित हाशिए पर खड़े पात्र की छोटी–छोटी ख्वाहिशों का भी पूरा न होना अत्यंत हृदयस्पर्शी है। कहानी का नैरेटर उसकी रेडियो की चाहत को पूरा करने के लिए उसके लिए रेडियो लेकर जाता है, लेकिन दुर्भाग्य से उसे पता चलता है कि गल्या का रेडियो प्राप्त करने का वह सपना अब पूरा नहीं हो पाएगा।कहानी का कथ्य मार्मिक है।

'स्पीड ब्रेकर' कहानी में भी व्यंग्य के पुट के कारण कहानी रोचक बन गयी है।कहानी की धारा प्रवाह भाषा में स्पीड ब्रेकर कहीं नहीं है।'दसवी के भोंगा बाबा' एक अ द्भुत आंचलिकता से ओत–प्रोत पात्र की जीवंत कहानी है।लोक जीवन के ऐसे जीवट पात्रों को कथाकार ने जीवित कर दिया है। यह लाजवाब कहानी इस संग्रह की उल्लेखनीय कहानी है। इसी प्रकार 'स्याही' कहानी में एक स्कूल अध्यापक पर प्रशासनिक अधिकारी के दबाव की व्यंग्य शैली में लिखी एक अन्य बेहतरीन और प्रभावशाली कहानी है।

कहानियों में कई स्थानों पर पात्रों के संवाद वहाँ की लोकभाषा में दिये गये हैं। इनसे कहानियाँ जीवंत हो उठी हैं। हालाँकि उन संवादों का हिन्दी रूपान्तर नहीं दिया गया है, जिससे वहाँ की लोक भाषा से अनजान पाठकों को उससे संप्रेषण में बाधा अवश्य महसूस होती है, लेकिन फिर संवादों का पुनर्पाठ करने पर अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

मुझे आशा है कि गोविन्द सेन की चयनित कहानियों के इस अच्छे संग्रह का साहित्य जगत् में खूब स्वागत होगा ।

कथा संग्रह– चयनित कहानियाँ

कथाकार– गोविन्द सेन

प्रकाशक– न्यू वर्ल्ड प्रकाशन, नई दिल्ली–110012,

वर्ष– 2025, मूल्य– 225/– रुपए

पुस्तक समीक्षा

खैबर दर्रा (कहानी संग्रह)

डॉ. मधु संधु
अमृतसर, 143104, पंजाब
मोबाइल– 8427004610

'खैबर दर्रा'–पाठकों को बाँधने वाली अद्भुत किस्सागोई भी और चिंतन सूत्र भी है। 'खैबर दर्रा' कथाकार, ग़ज़लकार, व्यंग्यकार और संपादक पंकज सुबीर का सद्यः प्रकाशित कहानी संग्रह है। इससे पहले उनके 'ईस्ट इंडिया कंपनी', 'महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ', 'कसाब डॉट गांधी एट यरवदा डॉट इन', 'चौपड़े की चुड़ैल', 'होली', 'प्रेम', 'रिश्ते', 'जोया देसाई कॉटेज', 'हमेशा देर कर देती हुई मैं' कहानी संग्रह आ चुके हैं। 'ये वो सहर तो नहीं', 'अकाल में उत्सव', 'जिन्हें जुर्म–ए–इश्क पे नाज़ था' और 'रूदादे सफर' उनके उपन्यास हैं। 'बुद्धिजीवी सम्मेलन' उनका व्यंग्य संग्रह है। 'अभी तुम इश्क़ में हो' ग़ज़ल संग्रह है।

'खैबर दर्रा' जिसकी टैग लाइन–'हर क़स्बे हर शहर में होना चाहिए' है, में उनकी नौ कहानियाँ संकलित हैं–'एक थे मटरू मियाँ एक थी रज्जो', 'हरे टीन की छत', 'खैबर दर्रा', 'वीरबहूटियाँ चली गईं', 'देह धरे का दंड', 'निर्लिंग', 'आसमाँ कैसे–कैसे', 'कबीर माया पापनी', 'इजाजत घोड़ाडोंगरी'।

प्रथम कहानी 'एक थे मटरू मियाँ एक थी रज्जो' 'वनमाली' पत्रिका के सितंबर–अक्तूबर संयुक्तांक 2024 में प्रकाशित हुई। यह 25–26 पृष्ठों की लंबी कहानी देश के वर्तमान स्नेरियों का पटाक्षेप करती है। कहानी में कुल चार पात्र हैं। व्यंग्य की पैनी धार कहानी में अनेक स्तरों पर प्रवाहित हो रही है। प्रमुख पात्र दुर्गादास त्रिपाठी के चरित्र में पत्रकार/ नेता के गुणों का पूरा एजेंडा खुला पड़ा है। वह जो तोड़–फोड़, मार–पीट, झगड़े–टंटे यानी नकारात्मक और ध्वंसात्मक कामों में सबसे आगे रह चुका हो, हत्याओं का सहयोगी या समर्थक हो, जेल यात्रा कर चुका हो। राजनेता वही है, जो पार्टी के हार जाने पर दल बदल ले, सत्तारूढ़ पार्टी में चला आए। अपने ऊँचे संपर्कों का झूठ बोलने में निष्णात हो। अपनी प्रशंसा के लिए भक्त–मंडली पाले हो। नेता वही, जो शतरंज–सी चालें चलनी जानता हो। नायक मटरू देश का आम आदमी आधा–अधूरा पढ़ाई के नाम पर आठवीं तक, पेशे के नाम पर अखबार के दफ्तर के मामूली काम, पार्टी वर्कर, आका दुर्गादास त्रिपाठी का वफ़ादार। दामोदर इस पपेट शो का अदना–सा खिलाड़ी है। रजनी महत्त्वाकांक्षी, अवसरवादी, चुस्त युवती है। हर संपर्क का फायदा उठाना उसे आता है। वह जानती है कि समय कलम वाले पत्रकार का नहीं, कैमरे वाले पत्रकारों का है। अपने प्रशिक्षण और संपर्कों का फायदा उठा वह राजधानी पहुँच जाती है। त्रासद और कारुणिक दृश्य यह है कि जर्जर पार्टी कार्यालय के नीचे आकार मटरू की मृत्यु हो जाती है और रजनी–मटरू की पत्रकार बेटी कैमरा मैन के साथ इस ख़बर का प्रसारण करती है, बिना यह जाने कि यह उसका बाप है। देश की प्रगति पर व्यंग्य यह भी है कि बस्तियों के लोग नहीं जानते कि स्कूल क्या चीज होती है, वे कभी स्कूल गए ही नहीं और छोटी बस्तियों में बाल श्रम कानून भी लागू नहीं होता। होश में आते ही बच्चे श्रमिक बन जाते हैं।

'हरे टीन की छत' मीरा और अर्जुन के किशोर प्रेम की, रागबोध की, प्राकृतिक छटा और सान्निध्य की कहानी है। काव्य पंक्तियाँ और सूत्र वाक्य प्राण तत्त्व बनकर आए हैं। जैसे–''एक गहरी–सी धुंध में पूरी पचमढ़ी समाई हुई है। दूर सतपुड़ा की चोटियों पर कुछ बादल लुढ़क–पुढ़क होने के बाद साँस लेने के लिए रुके हुए हैं। जैसे कोई रुई का गोला पहाड़ से लुढ़कते हुए पहाड़ पर लगे दरख्त में उलझ कर रुक गया हो।'' पृष्ठ 35

''हरापन भी यादों की तरह ही होता है, फुरसत के पलों की बरसात का स्पर्श पाते ही एकदम खिल उठता है।'' पृष्ठ 38

''किसी की स्मृतियों को हमेशा सुंदर बनाए रखना चाहते हैं तो उसके पास लौटिए मत, लौटकर आने से स्मृतियों में बनी सुंदरता नष्ट हो जाती है।''

'खैबर दर्रा' के कथ्य ने, कथागत मोड़ों ने, तभी एक सारा आकाश रच दिया था, जब पहली बार मैंने इसे 'हंस' के अक्तूबर 2024 अंक में पढ़ा था। दर्रे के दोनों ओर अलग–अलग संप्रदाय के लोग रहते हैं और एक दिन सांप्रदायिक आग भड़क जाती है, अनियंत्रित हो जाती है। कहानी मजहब और इंसानियत के दुश्मनों की, सांप्रदायिकता और दंगों की, नेतागिरी और गुंडागर्दी की, अस्तित्व और संघर्ष की ही नहीं, अपितु मूल्यवत्ता और हृदय परिवर्तन की, संवेदनशीलता और मानवीयता की, धर्म और नैतिकता की है। अपाहिज पिता और कर्तव्यनिष्ठ बेटी की सदाशयता कुटिल युवक की दुर्भावनाओं को सद्भावनाओं में, दुश्मनी को आत्मीयता में, नकारात्मता को साकारात्मकता में परिवर्तित कर देती हैं और दिमाग में छाए कुविचार, अश्लील भाव कुछ ऐसे धुलते हैं कि वह उनका वेलविशर बन जाता है।

'वीरबहूटियाँ चली गईं' भी पंकज सुबीर की लंबी कहानी है। यह प्रथमतः अक्तूबर 2024 में 'जानकीपुल डॉट कॉम' में प्रकाशित हुई थी। कहानी पाठक को तुलसी की रामायण और जायसी के पद्मावत में वर्णित वीरबहूटियों की यादों को ताजा कर जाती है। कहानी आज की वस्तुवादी, बुद्धिवादी एप्रोच को चुनौती
देती पाठक को वन्य प्रकृति के नैसर्गिक लोक की यात्रा पर ले जाती है।

यह मनुष्य और प्रकृति के अंतः सम्बन्धों की कहानी है। बालमन के अबोध प्रेम की कहानी है। लोक विश्वास और प्रकृति प्रदत्त स्वास्थ्य सूत्रों की कहानी है। वन सौंदर्य की भिन्न छवियों की कहानी है। रूप, रस, गंध की कहानी है। बाल मन के दो अबोध/ मासूम झूठों की कहानी है। पर्यावरण से दूरी बना रहे आज के मनुष्य की त्रासदी की कहानी है। कहानी की अनाम बालिका बीमार होने के कारण पर्यावरण की गोद में आई है। इमली और नींबू के पेड़, रंगीन क्रीपर की बेल, बोगनबेलिया, गुलमोहर, नींबू का पेड़, पीला कनेर, मेहंदी की झाड़ियाँ, मनी प्लांट, खजूर के पत्ते, झूले, फाख्ता पक्षी, झींगुर, गिरगिट, पगडंडियाँ, सियारों की आवाजें–पेड़, देखती महसूसती वह नाव न के आकार की कुर्सी पर कुछ देर बैठी रहती है। यहाँ पगडंडी से रोज एक बालक निकलता है, वह अक्सर उसके लिए बेकरी से कुछ लाता है और बताता है कि चिरमी के बीज, मख़मल जैसी वीरबहूटियाँ शारीरिक मानसिक सारी बीमारियाँ सोख लेती हैं। अगले परिच्छेद में वे बरसों बाद मिलते हैं, लेकिन अब यहाँ न इमली–नींबू के पेड़ हैं, न रंगून क्रीपर की बेल, न बोगनबेलिया, न गुलमोहर, पीला कनेर, मेंहदी की झाड़ियाँ, खजूर के पत्ते, फाख्ता
पक्षी, झींगुर, गिरगिट, पगडंडियाँ, सियार। अब वन प्रदेश दो मंजिला घरों, लोहे, पत्थर, ईंटों में बदल चुका है। अब शारीरिक मानसिक सारी बीमारियों को सोखने वाले चिरमी के बीज, मखमल जैसी वीरबहूटियाँ नहीं हैं। कुछ सूत्रात्मक पंक्तियाँ भी मिलती हैं–

''माँ अपने बच्चों को जल्दी–जल्दी बड़ा करना चाहती है, मगर दादियाँ–नानियाँ बच्चों को जिंदगी भर बच्चा बनाकर रखना चाहती हैं।'' पृष्ठ 85

''जमीन और नदी एक–सी होती हैं, सब कुछ अपने अंदर सोख लेती हैं।'' पृष्ठ 96

'आसमाँ कैसे–कैसे' में उस समय का वर्णन है, जब लोग जुबान के पक्के होते थे। राजेश को अपने मित्र दिलीप की दुकान खरीदनी है, बेटा विनय एग्रीमेंट बनवा कर लाता है और राजेश उस अतीत में खो जाता है, जब आदमी भले ही मर जायें, पर उसकी मृत्यु के बाद भी परिवार सब तरह के लालचों के प्रति अनासक्त होकर अपनी जुबान पर अडिग रहता था।

'कबीर माया पापिनी' कहानी कहती है कि पैसा सर्वोपरि है– मजदूर के लिए भी और ऑफिसर के लिए भी। एक तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करते पंकज सुबीर लिखते हैं कि फैक्टरी कर्मचारी की काम के दौरान दुर्घटनावश

मृत्यु हो जाती है और माँ–बाप दाह संस्कार करने की बजाय सरकार से, फैक्टरी मालिक से, बीमा कंपनी से मुआवजा लेने के लिए धरना दिये बैठे हैं। दूसरी ओर जिला कलेक्टर अरुण सिंह की माँ मृत्यु शैय्या पर है और वे आबकारी और शराब के ठेके से मिलने वाली एक करोड़ रिश्वत राशि के चक्कर में संवेदनाशून्य हो चुके हैं। माँ की मृत्यु हो जाती है, पर उनकी आँखों से एक आँसू तक नहीं गिरता, लेकिन जाना
पड़ेगा और एक करोड़ का नुकसान हो जाएगा, सोचकर वे फूट–फूट कर रो देते हैं।

'देह धरे का दंड' होमोसेक्सुयालिटी की सोडोम वृति पर है। यह दो युवकों की कहानी नहीं, पूरे समाज में चल रहे दुराचारों का लेखा–जोखा है। स्कूल के अधिकांश अध्यापक, समाज के सम्मानित धर्मगुरु–सब इन युवकों के साथ दुराचार करते हैं। इन्हें तो पता ही नहीं था कि होमो सेक्सुएलिटी होती क्या है। यहां जलकर आत्महत्या करने का कारण समाज है। कानून ने भले ही होमो युवकों को साथ रहने की इजाज़त दे दी हो, समाज को यह कदाचित् स्वीकार नहीं। कहानी सरकारी अस्पतालों की जर्जर अवस्था के बहुमुखी चित्र भी लिये हैं। 'निर्लिंग' में भी थर्डजेंडर की उन वेदनाओं, यातनाओं और शारीरिक शोषण का धारावाहिक सिलसिला है, जो अंततः आत्महत्या के लिए विवश करते हैं। ऐसे तुच्छ और क्षुद्र, महत्त्वहीन, कीड़े–मकोड़ों जैसे जीवन से तो मर जाना ही बेहतर है। समाज शारीरिक अंगों की बाकी कमियों को तो स्वीकार लेता है, लेकिन जननांग की कमी घृणा का, शोषण का कारण है। यह आत्महत्या नहीं, समाज द्वारा की गई हत्या ही है।

अंतिम कहानी 'इजाजत घोड़ाडोंगरी में धरा, ध्रुव और रवि के माध्यम धरातल पर लेखा–जोखा मिलता है। ध्रुव उच्च जाति का सुंदर पुरुष है, लेकिन अपने सौंदर्य–सजग व्यक्तित्व के कारण, चेतन–अचेतन में समाये अतिरिक्त अभिमान के कारण वह धरा के जीवन का वह भाग नहीं बन पाता, जो एक आदिवासी रवि बन जाता है। लेखक ने धरा की तुलना करते हुये गुलजार की 'इजाज़त' फिल्म की बात की है, जिसमें रेखा पति नसीरूद्दीन शाह के पैर छूने के बाद शशिकपूर के साथ चली जाती है। ऐसा ही धरा ने किया है, क्योंकि उसे ध्रुव तारे का नहीं, आसमान पर चमकते रवि की चाह है, उस रवि की, जिसके पास प्रकाश, ऊर्जा और उष्मा–सब एक साथ है।

इन कहानियों में अवसरवादी राजनेता भी हैं, मृत मानवीय संवेदना वाले अफसर–मजदूर भी तथा ईमानदार विश्वसनीय सच्चे और सुच्चे मनुष्य भी। होमो का बहुमुखी शोषण भी है और
हृदयविदारक चीत्कार भी। किशोर प्रेम भी, दाम्पत्य जीवन के मानदंड और गलियारे भी। पाठकों को बाँधनेवाली अद्‌भुत किस्सागोई भी और चिंतन सूत्र भी।

कहानी संग्रह, लेखक– पंकज सुबीर, प्रकाशक– राजपाल एंड सन्ज, नयी दिल्ली, मूल्य–325 रुपये, पृष्ठ–176

ग़ज़लें

नवीन माथुर पांचोली

1
कहाँ अब आसमानों की कमी है
परों में ही उड़ानों की कमी है
सड़क को देखकर सोचा कि ये सब
नगर में आशियानों की कमी है

छुपा लेती हैं आहें बात अपनी
सदाओं में ज़बानों की कमी है
कोई लायक कहाँ से आये चुनकर
जहाँ सच इम्तिहानों की कमी है

ख़रीददारी में हुई जेब खाली
यहाँ सस्ती दुकानों की कमी है
मज़ा आया नहीं पढ़कर क़िताबें
वो जिनमें दास्तानों की कमी है।

2
सभी दरिया समुंदर के लिए थोड़ी है
हवा सारी बवंडर के लिए थोड़ी है
उठी है उँगलियाँ इस ओर सारी लेकिन
इशारा एक मंज़र के लिए थोड़ी है

जताना नींद, आँखें और रातें, सपनें
सभी हर हाल बिस्तर के लिए थोड़ी है
हमारी शान है औरों से ज़रा हटकर
मग़र ये बात अंतर के लिए थोड़ी है

यहाँ इतना वहाँ उतना मिला है जितना
किसी का साथ अक़्सर के लिए थोड़ी है।

3
जहाँ पर मौज–मस्ती कम रही
वहाँ पर ज़ोर हस्ती कम रही
हमें जिसकी ज़रूरत ख़ास थी
वह इक चीज़ सस्ती कम रही

कमी थी इंतज़ामों की तभी तो
कभी गाँवों में बस्ती कम रही
वही बातें नहीं रख पाई दमखम
कि जिनको सर–परस्ती कम रही

वक़्त पर हो सकेंगे काम कैसे
अगर वे ज़बरदस्ती कम रही।

4
ग़ैर को अपना बना कर देखिये
बात इतनी आज़माकर देखिये
दूर के अहसास में रक्खा है क्या
हर नज़ारा पास जाकर देखिये

क़ामयाबी के किले नज़दीक हैं
हौसले दिल में जगाकर देखिये
फिर लगेगी ये तरन्नुम ज़िंदगी
गीत कोई गुन–गुनाकर देखिये

ख़ुश–नुमाई तो बहुत आसान है
इस ज़रा सा मुस्कुराकर देखिये।

कविता

मनोज चौहान
बुशहर, जिला शिमला (हिमाचल प्रदेश)
मो.– 94180 36526

बेटियाँ

घर के सामूहिक उत्सव में
7 साल की बेटी
नाचती–गाती और खेलती–कूदती
अचानक बैठ जाती है गुमसुम
और सबके लाख पूछने पर भी
रहती है ख़ामोश
मानो छुपाए हुए है अपने भीतर
ब्रह्मांड का कोई
अलौकिक रहस्य

फिर कुछ दिनों के बाद
एल्बम देखती बार
करती है खुलासा
कि उस दिन आ गई थी
घर से दूर रह रहे
पिता की याद

वीडियो कॉल पर
एक दिन
पूछती है पिता को
कि आप कब आओगे घर
इस सवाल के जवाब को
पिता कर देता है गोलमोल
हँसते हुए

वह लेती है हिसाब हर चीज का
ऑफिस से कब आए आप
आज गए थे क्या वॉक पर
क्या बना रहे हो खाने में
इन तमाम सवालों के जवाब में
पिता छेड़ता है उसे
बेटा, दादी अम्मा की तरह
क्यों कर रही हो इतनी पूछताछ
हल्की–सी नाराज होकर
सिकोड़ लेती है नाक–भौं
कहती है फिर
मुँह बनाकर
आत्मविश्वास से
कि यह सब बताना जरूरी है उसे
पिता को क्षण–भर के लिए
स्मरण हो आता है
ऑफिस में हाल ही में मुख़ातिब हुए
एक कुशल और तल्ख़ ऑडिटर का

मगर यह सब सुनकर
काफूर हो जाती है
तमाम चिंताएँ
दुनियादारी के झमेले में उलझे
पिता की

बेटियाँ छोटी हों या बड़ी
पिता को डाँटती है
पुचकारती हैं
लाड़ लगाती हैं
अधिकार से
बेटियाँ सच में ही
रखती हैं दिल और मिज़ाज
माँ का, दादी का
और नानी का !

समीक्षा

कविताओं में अंतस की सुगंध

डॉ. विजय शंकर मिश्र
भदई निवास, ब्रह्मस्थान, बालू घाट
मुजफ्फरपुर–842001,
चलभाष – 9430460435

कविता जीवन की व्याख्या भी है, जीवन का दर्शन भी, जीवन का सौंदर्य भी और जीवन की सर्वोत्तम प्रगति की राह भी। शब्दों से जीवन को कहाँ तक समझा जा सकता है, इसकी गहरी समझ की कवयित्री अंजना वर्मा का ताजा प्रकाशित पैंसठ कविताओं का संग्रह अभी हमारे हाथ में है, इसका शीर्षक देखकर चमत्कृत भी हूँ और बार–बार यही भाव मन में आता है कि 'सुगंध भी एक भाषा है' जैसे शीर्षक को काव्यात्मक कहा जाए अथवा दार्शनिक। सुगंध पर एक नहीं, अनेक आयामों के साथ इस संग्रह में कवयित्री के भाव प्रकट हुए हैं। इससे पहले के प्रकाशित उनके छः कविता–संग्रहों को भी हमने देखा और पढ़ा है, लेकिन सुगंध भी एक भाषा है, तक आते–आते कविता का तेवर और मिजाज मेरी दृष्टि में कुछ भिन्न–सा हो गया है। यहाँ तक कि कवयित्री दर्शन और यथार्थ के मध्य अपने स्वत्व को उभारने की कोशिश में सफल हो गई–सी लगती है। इनके भावात्मक–दार्शनिक होने का सबसे बड़ा प्रमाण इन्हीं की भूमिका में देखिए। लिखती हैं–''जब मैं सिर्फ कविता के साथ अंतरंग क्षणों में होती हूँ, तो यह महसूस करती हूँ कि वही मुझे रच रही है। कविता को रचने की शक्ति मुझ में नहीं है। मैं कविता को शब्दों का ढेर नहीं मानती। मैंने उसे केवल शब्दों में ही नहीं देखा है, बल्कि उसे माँ माना है। उसने मेरे अंतस में उस कवि–चेतना को जन्म दिया है, जो बचपन से मेरे आभ्यंतर में समायी मेरे भावों का पोषण करती हुई उसे सँवारती रही है। यही मेरे आठों पहर की सहचरी और मेरी आंतरिक शक्ति है।''

अंजना वर्मा की चिंता उस वर्ग और समाज के प्रति ज्यादा है जो दलित है, उपेक्षित है, जिसका सपना रोज बनता है, रोज काँच की तरह समय के पत्थर से टकराकर चूर–चूर हो जाता है। वह वर्ग आजादी के इतने दिन बीत जाने के बाद भी सुख की तलाश में भटक रहा है। दुर्दिन की धुंध से बाहर वह वर्ग आज तक नहीं निकला। ऐशोआराम की जिंदगी जीने के अरमान पर कब्रपात होता रहा। किसी–न–किसी उपाय के प्रयास व्यर्थ हो रहे हैं। अंजना वर्मा केवल उस वर्ग के प्रति सहानुभूति ही नहीं दर्शातीं, बल्कि प्रश्नचिह्न खड़ा करती हैं–''हमने तुमसे कोई शिकायत नहीं की/ झुग्गियों में हँसकर काटते रहे जिंदगी/ तुम्हारी महँगी गाड़ियों की सैर के लिए हम व्यस्त रहे/ चिकनी सड़कों की कालीन बिछाने में/ तुम्हारे फरमान पर स्वादिष्ट व्यंजन/ भूखे पेट मिनटों में तुम तक पहुँचाने में/ तुम्हारी सुख–सुविधा के अनुसार/ अपने को ढालने–बनाने में/ अपनी खुशियों में हमें शामिल भी न होने दोगे?''
(घर लौटते हुए)

अंजना वर्मा मुक्त होना और दूसरों को मुक्त रखना चाहती है। बंधन अनेक प्रकार के हैं। सारे बंधन टूटे और एक नए और सुंदर जीवन की शुरूआत हो, यही तो जीवन की सफलता और सार्थकता है, शब्दों से भावों को जोड़कर बदला जा सकता है समाज। हमारे भीतर और बाहर का द्वंद्व समाप्त होना जरूरी है। इसे दोहरी मानसिकता के कारण नहीं समझा जा सका कि ''पूरी दुनिया में दुखों का बस एक ही चेहरा होता है/ उसे पहचानो/ अब भी तो तोड़ दो ये विभाजक रेखाएँ/ जिनसे कुछ मिला नहीं आज तक/ सिवा नफरत, हिंसा और युद्ध के।''

मुक्त होना सरल प्रक्रिया नहीं है। गाँठ बार–बार कोशिश करने पर खुल तो जाती है, लेकिन उस गाँठ का पूरा–का–पूरा खुलना तभी संभव है, जब अंतरंगता में यह बात समझ में आ जाए कि ''नदी मुक्त होती है बहकर/ शब्द मुक्त होते हैं मुख से निकलकर/ कविता मुक्त होती है किसी के अंतर तक जाकर/ शास्त्र ज्ञान मुक्त होता है यथार्थ को छूकर/ साधना मुक्त होती है अज्ञेय को जानकर/ प्रेम मुक्त होता है अपना सर्वस्व देकर/ अहं मुक्त होता है अपनी अहंता खोकर/ तुम जहाँ खड़े हो वहीं से अपनी मुक्ति ढूँढो।''(मुक्ति)

हम समझ सकते हैं कि इस महत्त्वपूर्ण कविता के जरिए कविता जीवन को किसी मुकाम पर देखना चाहती है। यही गाँठ का खुलना है, जिसे आज तक ढोया जा रहा है।

कुल मिलाकर 'सुगंध भी एक भाषा है' कविता संग्रह एक सुंदर, गंभीर और जीवन–सौंदर्य के यथार्थ से संपृक्त संग्रह है। कोई जरूरी नहीं कि किसी संग्रह की सारी–की–सारी कविताएँ अच्छी हो, लेकिन यह भी कोई जरूरी नहीं है कि सारी–की–सारी कविताएँ सुंदर और मार्मिक नहीं हों। अतिशयोक्ति से बचते हुए, अंजना जी की कविताएँ पढ़ते हुए हमें ऐसा लगता है कि कवयित्री के पास अपना एक व्यापक 'विजन' है, कथ्य को पहचानने की पूरी शक्ति है। कथ्य की सुंदरता तब और निखर जाती है, जब भाषा का संस्कार और व्यापक हो जाता है। आधुनिक कविता पर एक बड़ा खतरा आज यही है कि कई के पास कहने के लिए बहुत कुछ है, लेकिन कैसे कहना है, किस तरह जनता तक पहुँचाना है–इसका ज्ञान कमजोर है। और यही कारण है कि अनगिनत कविताएँ रोज लिखी जाती हैं और उसी रफ्तार में कालकवलित भी हो जाती हैं। प्रतिभा के साथ–साथ पूरा–पूरा अवलोकन सामर्थ्य अंजना जी में है। उनकी कविताएँ आम पाठक और गंभीर पाठक दोनों पसंद करते हैं। वह चाहे 'मिट्टी की आवाज' कविता हो चाहे 'लौट आओ नदी' हो, चाहे 'आधी रात का पेड़'। इस संग्रह की तमाम कविताओं में सुंदर, सम्यक् और सार्थक जीवन की तलाश है। इनकी दृष्टि में सुगंध एक सांकेतिक शब्द है जिसका प्रतीकार्य हम आत्मा भी निकाल सकते हैं, परमात्मा भी निकाल सकते हैं। इनकी सुगंध वह सुगंध है, जो अपनी मौजूदगी दूर–दूर तक बता देती है, लिख देती है हवाओं के पत्रों पर खुशबू से अपना नाम और पता। पुकारने के लिए हमेशा आवाज की जरूरत नहीं होती। सुगंध भी एक भाषा है। इसीलिए किसी कवि ने कहा है–मौन भी अभिव्यंजना है। सुंदर छपाई के लिए श्वेतवर्णा को धन्यवाद!

समीक्षित कृति 'सुगंध भी एक भाषा है' (कविता–संग्रह)
कवयित्री–अंजना वर्मा, पृष्ठ–127. मूल्य–249/
श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

समीक्षा

'सुनो गंडक' की आत्मिक और आत्मीय प्रेम कविताएँ

विजय कुमार तिवारी
मो.–9102939190

सम्पूर्ण सृष्टि, पूरा संसार, पूरी प्रकृति, संपूर्ण मानवता, सभी जीवधारी और कण–कण में प्रेम ही है, जो जोड़ता है, जुड़ता है, हृदय में उतरकर आह्लादित करता है, सौंदर्य बिखेर देता है और हर किसी के जीवन में सार्थकता भर देता है। प्रेम के बिना इस दुनिया में कुछ भी नहीं है और यदि प्रेम है तो हर किसी का जीवन हर तरह से परिपूर्ण है। प्रेम को लेकर अलग से बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, सभी जानते–समझते हैं और इसके लिए तड़पते–मचलते हैं। समस्या खड़ी होती है, जब किसी का एकांतिक या व्यक्तिगत प्रेम समष्टि के प्रेम को चुनौती देता है या कोई अपनी स्वतंत्र राह लेता है।

साहित्य की अपनी मर्यादा है, मर्यादित साहित्य ही व्यक्ति को, समाज को या देश–दुनिया को दिशा दिखा सकता है। हमारा एकांतिक सुख अपनी जगह महत्वपूर्ण है, परन्तु सृजित होकर जब वह सबके सामने आता है, तो यही समाज यहाँ के लोग उसका मूल्यांकन करना शुरू कर देते हैं। यह मूल्यांकन ऐसे ही नहीं होता है, बल्कि पूरी जिम्मेदारी से निर्ममतापूर्वक होता है, रचनाकार उसके प्रभाव से बच नहीं पाता, उस पर उँगली उठती है और उसकी छवि तय हो जाती है। अक्सर कहा जाता है, साहित्य में समाज का चेहरा दिखाई देता है। साहित्यकार अपने अनुभवों को जोड़ते हैं, परन्तु हमारे सारे अनुभव साहित्य का हिस्सा नहीं बनते या बनते भी हैं, तो सर्जन के चरित्र की चर्चा जुड़ी रहती है और उसकी गहरी पड़ताल होती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो अधिकांश रचनाकार आत्ममुग्ध होकर आत्म– नियंत्रण की विवेकशील चेतना की सीमा का ध्यान नहीं रखते और बहुत सारी मर्यादाओं को तोड़ते हैं। मत, मतवाद या पंथ आदि के झगड़े होते रहते हैं। समाज हित में पूरी मानवता के हित में रचनाकारों से बेहतर सृजन की उम्मीद की जाती है। उनका अंतर्मन भी सावधान करता है। यह तो सुनिश्चित है और सभी जानते हैं कि लेखन का प्रभाव समाज पर, मानव व मानवता पर पड़ता है। साहित्य में स्वान्तः सुखाय की चर्चा होती है, परन्तु किसी भी तरह समाज हित को देखा अनदेखा नहीं किया जा सकता।

स्मिता गुप्ता का कविता संग्रह 'सुनो गंडक' प्रेम की आत्मिक और आत्मीय भाव संवेदनाओं की कविताओं से भरा हुआ है। अपनी प्रेमानुभूति और उसके प्रकटन का निर्वाह उन्होंने खूब किया है और जीवन के हर प्रसंग में उनकी समझ और उड़ान को समझा जा सकता है।

हर कोई पहले कवि होता है और किसी की भाव–संवेदनाएँ काव्य विधा में सर्वाधिक प्रकट होती है। कविता से कवि जीवन्त होता है, साथ ही उसका कोई अनुभव, कोई सुख, कोई दुख काव्य के रूप में आलोकित होकर पाठकों को संवेदित या प्रभावित करता है। वैसे यह कोई बड़े विमर्श का विषय नहीं है और इसके पक्ष या विपक्ष में तर्क या विरोध की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दोनों की अपनी–अपनी स्थितियाँ और अपनी–अपनी आवश्यकताएँ हैं। सच पूछिए तो कविता के बिना हमारा काम नहीं चलता, क्योंकि संसार में हमारे जीवन में काव्य रचा–बसा होता है। कविता में सौंदर्यबोध, मानवीय संवेदनात्मक अनुभूतियों के साथ स्वतः उभरता रहता है, कविता सुख व आनंद देती है और विपरीत परिस्थितियों में संबल प्रदान करती है।

समीक्षात्मक चिंतन या विवेचन के क्रम में मेरा ध्यान साहित्य रच रहे नए कोपलों पर अधिक जाता है, इनके अनुभवों में ताजगी होती है, ये पके–पकाये नहीं होते, बल्कि प्रेमबोध, सौंदर्यबोध और संघर्ष की नूतन भावनाओं से भरे होते हैं। ये सीख रहे होते हैं और यथार्थतः जी रहे होते हैं। इसलिए इनके लेखन में कोई कच्चापन या कुँआरापन होता है। इन्हें सहारा देने की जरूरत है, सहलाने–सँवारने की जरूरत है, बल्कि बेहतर तरीके से गढ़ने की जरूरत है। मुझे लगता है कि इनके अनुभव बहुत महत्वपूर्ण हैं और इनके लेखन को साहित्य में जगह मिलनी ही चाहिए। हिन्दी साहित्य की यात्रा में एक भयानक दौर गुजरा है, कमोवेश आज भी जारी है और हर कालखंड में इन्हें वह स्थान नहीं मिलता जो मिलना चाहिए। बहुत सारे स्वनामधन्य पुरोधाओं ने इनकी और इनके लेखन की उपेक्षा की है, बल्कि सच तो यह है, अनेकानेक भ्रूण हत्याएँ हुई हैं। इससे किसी का भला नहीं होता, बल्कि साहित्य का सर्वाधिक नुकसान होता है।

स्मिता गुप्ता का जन्म गंगा–गंडक के संगम पर बसे शहर हाजीपुर में हुआ है। हमारे लोक जीवन में संगम का अपना महत्व है, ऐसी मान्यता है कि संगम जीवंत तीर्थ तो होते ही हैं, वहाँ पर किसी की प्राण–चेतनाएँ जागने लगती हैं और भीतर के सारे भाव पुष्पित–पल्लवित होने लगते हैं। संगम और उसके आस–पास ऊर्जा का प्रवाह बना रहता है, इसीलिए हमारे ऋषियों– मुनियों का वास किसी न किसी संगम पर रहा है। स्मिता गुप्ता ने निश्चित ही इस रहस्य को जाने–अनजाने समझा है और उनके मानो संसार में प्रेम काव्य का प्रस्फुटन हुआ है। इसका स्वागत होना चाहिए और इन कविताओं को पढ़ने–समझने की आवश्यकता है।

हिन्दी संपादक, फारवर्ड प्रेस, नई दिल्ली के नवलकिशोर कुमार ने 'बदल रही' हिन्दी कविता और इसमें स्त्रियों की कविताओं पर अपना मन्तव्य रखा है। इन कविताओं को पढ़ते हुए उनका मन पहले छायावादी युग में जाता है और शीघ्र ही इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में लौट आता है। वह देखते हैं कि एक स्त्री गंडक नदी की चिंता कर रही है, वह नदी को भूलती नहीं है, बल्कि उसी को संबोधित करके अपने पंखों को खोलती है और शब्दों का सहारा लेकर काव्य सृजन करती है। उनकी यह पंक्ति भी देखने लायक है–''यदि आप आधुनिक स्त्री–विमर्श के विस्तृत आयाम को देखेंगे तो मुमकिन है कि स्मिता गुप्ता की कुछ कविताओं से आप असहमत होंगे, लेकिन यह एक असफलता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए कि आज भी बहुसंख्यक स्त्रियाँ स्वयं के अस्तित्व का सही आकलन नहीं कर पाती हैं।'' उन्होंने स्मिता गुप्त को उनके पहले संग्रह के लिए बधाई देते हुए लिखा है–''यह काव्य संग्रह आपकी स्त्री–अनुभूतियों के विविध आयामों से परिचित कराएगा, आपको ऐसे दृश्य दिखायेगा कि आपको लगेगा कि इन कविताओं में जो कुछ भी है, वह सब आपकी आँखों के सामने या तो घटित हो चुका है या फिर घटित हो रहा है।'' मेरा ख्याल है कि ऐसे सटीक विश्लेषण के बाद किसी और के कहने या विचार करने के लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है।

अपने आत्मकथ्य में स्वयं स्मिता गुप्ता लिखती हैं–''गंडक नदी मेरी प्रेम कविताओं के आधार अवलंबन के रूप में है।'' वृंदा और विष्णु प्रसंग इस नदी को नारायणी के रूप में पौराणिक बना देती है और वह लिखती है–यह नदी मुझे प्रेम के प्रतीक और बिम्ब के रूप में दिखी, इसलिए मेरी कविताओं में आधार व अवलंबन भी बनी। प्रेरणास्रोत भी बनी

है। प्रेम को लेकर उनका यह कथन गौर करने योग्य है–''मेरी दृष्टि में प्रेम एक ऐसी शक्ति है जो विभिन्न जज़्बातों–भावनाओं के जरिए हमें विभिन्न रिश्तों से जोड़े रखी है।'' उनका प्रश्न उचित ही है–''अगर हम अपने निजी जीवन से प्रेम को तिरोहित–विलोपित कर दें, तो हम अपने घर–परिवार, देश और समाज को कैसे प्यार कर सकते हैं।'"

'सुनों गंडक' काव्य संग्रह में उनकी कुल छियासठ कविताएँ हैं जिनमें अधिकांश प्रेम के विभिन्न भावों से भरी हैं और बिल्कुल ताजी हैं। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कवयित्री ने साहस का परिचय दिया है और प्रकृति के नाना बिंबों का सहारा लेकर आत्मिक अनुभूतियों को प्रस्तुत करते हुए पाठकों के हृदयों को धड़का दिया है। शायद कवयित्री अपने सामान्य जीवन में ऐसी ही हैं, प्रेम करती हुई, प्रेम से भरी हुई और प्रेम बाँटती हुई। उनकी कविताओं के शीर्षक अलग तरीके से प्रभावित करते हैं, वह संवाद करती है और उनके शीर्षक होते हैं–'सुनों गंडक', 'ओ गंड़क', बोलो प्रियतम', 'चलो हम इश्क करें' या 'मेरे गुलमोहर'। यह उनकी अपनी शैली है और उनकी भाषा में अद्‌भुत जीवंतता है। बावजूद कुछ ठहरावों के, मुझे उम्मीद है, ये कविताएँ साहित्य में अपनी जगह बनाएँगी और सराही जाएँगी।

'सुनो गंडक' कविता में वह गंडक नदी का साक्षी भाव से मानवीकरण करती है, अपने प्रेम मिलन, आलिंगन की स्मृति संजोती है और दृश्य बनती है, जब सूर्य झुक रहा था/ संध्या का रक्तिम मुख चुमने के लिए/ प्रणय के लिए, आलिंगन के लिए/ तब तुम्हारे तट पर आए थे/ दो तन/ दो मन। उनका हृदय सुखद स्मृतियों से भरा हुआ है और वह उन दोनों के लिए ईश्वरीय चेतना में तलाश करती है–राधा–कृष्ण या लक्ष्मी नारायण। 'साक्षी' वृंदा व श्रीहरि के प्रेम की अद्‌भुत कविता है जिसमें गंडक साक्षी है। गंडक के जल में 'दो छवि', 'गंडक के तट पर', 'गंडक का जल' और 'ओ गंडक' जैसी कविताओं में उन्होंने अपने मनोभावों, प्रेम–मिलन आदि को जीवन्त किया है। दोनों साथ–साथ तट पर विचरण कर रहे हैं, जल में दोनों की छवियाँ मधुर भाव पैदा कर रही हैं।

हमारे काव्य में प्रतीति की परंपरा रही है, किसी को देखने से किसी और की याद आती है, नायिका नायक को कुछ वैसा ही बताना चाहती है–जब तुम देखोगे गंडक नदी को/ कल– कल करते, छल–छल बहते/ उसके शीतल, निर्मल मुदु जल को/ तुम्हें मेरी प्रीत याद आयेगी। कवयित्री को इतने से संतोष नहीं है, वह गहरे भाव से सब कुछ याद दिला देना चाहती है। जब एकांत में छूओगे अपनी अंगुली/ उस स्पर्श में, उस छुअन में, मेरे होठों का चुंबन/ मेरे तन–मन में रची–बसी मेरी साँसों की अगन/ मेरी प्रीत की याद दिलाएगी। प्रेम की शीतलता लिए हथेली में गंडक का जल है, उसमें नायिका की छवि, हृदय का दर्पण और अन्तर्मन का रंग–रूप है। वह प्रतीक्षा नहीं, बल्कि पहल करती है, हथेली को चुमती है, अपने अधरों की अमिट मुहर लगा देती है और आग्रह करती है–इस जल को तुम छलकने न देना/ इसमें कोई अश्रु कण गिरने न देना/ जल के दर्पण में समाहित मेरे रूप को / बिखरने न देना, टूटने न देना। वह बावरी सी है, नायक उसे आलिंगन में ले लेता है और वह कृतार्थ सी अनुभव करती है। 'प्रेम की मौन अभिव्यक्ति', 'अब हृदय पर कोई प्रतिबंध नहीं है' जैसी कविताओं में कवयित्री उसी रौ में बहती हुई दिखाई दे रही है।

'मेरी देह' कविता में उनका बेटे के साथ चकित करता आत्मीय भाव मुखरित हुआ है। जादू की छड़ी, बौरायी हवा, तुम बिन, मेरा प्रेमी मन, हम इतिहास के सर्जक है जैसी कविताएँ पाठकों को प्रेम के नाना भाव–दृश्यों की सहयात्रा करवाने वाले हैं। अंधेरा, अंजोरिया, मन मृग, प्रेम चदरिया और प्रेम सभी कविताएँ उनके मनोभावों को खुलकर व्यक्त करते हैं और अंधेरे, अकेलेपन की व्यथा चित्रित करते हैं। इस तरह संयोग–वियोग दोनों ही परिस्थितियों को उन्होंने जीवन्त और यथार्थतः परिभाषित किया है अपनी कविताओं में।

'अलभ्य प्यार' चाँद व चकोरी की कविता है जिसे उन्होंने किसी नैराश्य भाव में तमाम प्रेमिकाओं को सावधान किया है। 'प्रेम की पौध' और 'प्रेम की सौगात' दोनों प्रेम के सहज प्रकटीकरण की कविताएँ हैं, इन्हें रोका नहीं जा सकता. इनकी सुगंध फैलती ही है। 'तुम्हारा इंतजार है' और 'तुम्हारी छुअन' कविताओं में प्रतीक्षा और मिलन के गहरे भाव उभरे हैं। उनके लिए छुअन या स्पर्श बहुत मायने रखता है, वह बार–बार उन अनुभूतियों को प्रकट करती है और प्रेम के गहरे उन्मत्त भाव दृश्य रचती है। 'विष का प्याला' उपालंभ के भावों की कविता है, वह जिस तरह अपना प्रेम प्रकट करती हैं, शिकायतें भी लिख डालती है और प्रेम को अमृत समझ विष पीना मानती है। 'प्यार का प्रतीक' कविता में गली, मोड़, चौराहा उनका प्रेम सर्वत्र पसरा हुआ है, वह संकेत करती हैं, नाना बिंबों–प्रतीकों से सजाती–सँवारती है और बताती हैं कि उसी गली में है उसका घर।

एक तरह से देखा जाए तो इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ पुरानी स्मृतियों को जीवन्त करती हैं। एक ख़्वाब, दोस्त थेथर दिल, ताप, बहुत याद आती है तुम्हारी, सात जन्मों का प्यार और शरद की रात जैसी कविताएँ इन्हीं भाव–संवेदनाओं से जुड़ी हैं। यादों को जीवन्त करना और सुखी होना या जटिलताओं को सुलझा लेना कवयित्री की कई अपनी शैली है जो अपनी कविताओं में सुखद क्षणों का रहस्य उजागर करता है। पुनरावृत्ति या बार–बार एक ही भाव पर अटके रहना साहित्य में पुनरुक्ति दोष माना जाता है। हालाँकि मेरा किंचित् मात्र चितन है, ऐसा तभी संभव है जब वह प्रेम की प्रगाढ़ता में हों. आकंठ डूबी हुई हो और उसे कुछ और सूझ न रहा हो। नायिका भेद में मुग्धा, अधीरा या प्रगल्भा की चर्चा होती है। इससे उनका साहस माना जाना चाहिए और उनके मनोभावों का सम्मान होना चाहिए।

'नन्हा पौधा' में वह प्रियतम के नाम का विरवा लगाती है, 'मेरे सनम' में उनके रंगों का अनुभव करती है और 'तुम वैसे ही हो' कविता में सहजता से सब कुछ स्वीकार कर लेती है। ऐसे दृश्य तभी चित्रित होते हैं जब प्रेम अपनी उच्चतर स्थिति में हो और एक–दूसरे पर सम्पूर्ण विश्वास हो। 'प्यार के लिए' कविता में उनके मौलिक चिंतन–भाव उजागर हुए हैं।

'मोहपाश' प्यार के लिए दर–बदर भटकती लड़कियों की विचित्र मनः स्थिति की कविता है, अकुलाहट, बेचैनी और ख्वाबों की प्यासी स्थिति में मात्र एक बूँद बनकर प्रेमी टपकता है, फिर भी सुकून मिलता है। उनका मूल भाव है–मौत ही मिलेगी फँसकर प्रेम के फाँस में। वह न जानें किसकी तलाश में भटक रही है। 'कांटों की चुभन' प्रेम करती नायिका की प्रतीक्षा के बावजूद प्रेमी के न आने से उपजी पीड़ा की कविता है। 'अब तो आओ कृष्ण कन्हाई' कविता में कोरोना काल के विपदा से भरे दृश्य हैं और कवयित्री बचाव के लिए अपने आराध्य कृष्ण को पुकार रही है। प्रतीक्षा का अपना सुख है, बादल ने संदेश दिया है प्रियतम के आने का, नायिका के साथ सम्पूर्ण प्रकृति हर्षित है, विश्वास बढ़ता गया है और प्यार गहरा हुआ है। 'अंतरंग दोस्त' दोस्ती की पवित्र भावनाओं से भरी कविता है। दोस्त प्रकाश स्तम्भ है, जाड़े की गुनगुनी धूप है, भाँग के नशे की तरह है और उसका

बोलना आरती व अजान जैसा है। वह प्रियतम को अपना अंतरंग दोस्त मान लेती है–हाँ, तुम हो/ तुम ही मेरे अंतरंग के दोस्त/ तुम ही हो मेरे अंतर्मन के दोस्त। 'सोमरस' और 'तुम्हारा प्यार' कविताएँ जीवन की गहन सच्चाई बताती है। कवयित्री पहले सावधान करती है, फिर प्रेम की आग में तपने को कहती है और अंत में सहजता से आश्वासन देती है–

''तो मेरा महुआ शराब–सा यह जोबन
मादक सौन्दर्य का, प्रीत का सोमरस
मैं स्वयं नैनों के प्याले में भर–भरकर
तुम्हें घूँट घूँट पिलाऊँगी जीवन भर।''

'तुम्हारा प्यार' कविता की प्रेयसी अत्यन्त संतुष्ट है और उन सारे बिंबों, प्रतीकों में सुखी होती है। ऐसे दृश्य कम ही देखने को मिलते हैं, जब प्रेमी–प्रेमिका एक दूसरे से संतुष्ट होते हैं। कवयित्री के ये भाव सुखद संदेश देने वाले और सीख भी। 'राज' कविता नायिकों के ऐसे ही अनेक अतिरेकों, सुखद और संतुष्ट मनोभावों से भरी है–

मेरे दिल में धड़कता है वो
मेरे प्राणों में बसता है वो
मेरी रूह में समा गया है वो
एक एहसास जगा गया है वो।''

मोहब्बत, वो दम भरते हैं, मन मन्दिर, प्रेम कविताएँ और यौवन जैसी कविताओं में पति–पत्नी या प्रेमी–प्रेमिका के बीच के सारे मनोभाव, आपसी सम्बन्ध, आग्रह–दुराग्रह, संतुष्टि–असंतुष्टि, मिलना–बिछड़ना और सारे प्रेमिल भाव भी खूब उजागर हुए हैं। उन्होंने कुछ भी छोड़ा नहीं है और ना कोई परहेज किया है, बल्कि सब कुछ अपने अनुभव के आधार पर या आसपास जो देखा है, खुलकर लिखा है। प्रेमियों के बीच विनोद के क्षण आते हैं, उलाहनाएँ दी जाती हैं या विरोध, करुणा या प्रेम की परिस्थितियाँ उभरती हैं और दोनों एक दूसरे के लिए यथा विह्वल होते हैं–

''आज देखा मैंने वे बेकल हुए
मेरे आँसुओं को देखकर तड़प उठे
वो एक पल भी न सह सके
मेरी तड़प, मेरे अश्कों का ताप
और मुँह मोड़कर चले गए।''

कवयित्री के सारे प्रश्न चिन्तित व व्यधित करने वाले हैं। 'मन मन्दिर' कविता का भाव यही है, एक बार यदि किसी से प्रेम हो गया, वह नहीं मिला, फिर भी वह मन मन्दिर में बसा रहेगा। 'प्रेम कविताएँ' कविता में कवयित्री प्रेम की कोई भिन्न परिभाषा रचती है और प्रेमी के प्रेम भावों को सम्मान देती है–

''वो एक प्रेमी था जिसके सम्मान में
एक स्त्री ने तन नहीं, मन किया था अर्पित।''

'यौवन' कविता में स्त्री जीवन में यौवन के आगमन की स्वाभाविकता और उसका प्रभाव वर्णित है–प्रश्नोत्तर शैली में कवयित्री का संवाद देखिए–

''कहते हैं सब, तुम पर यौवन आया है
तेरे तन–मन पर यौवन का मद छाया है
मैंने कहा–यौवन के मद में
कौन नहीं मदहोश हुआ है
किसका तन नहीं महका है
किसका मन नहीं बहका है।''

कविता के अंत में स्वयं को दोषमुक्त करते हुए वह लिखती है और यौवन के आने की स्वाभाविकता बताती है–

''यौवन पर किसी का वश नहीं
मेरा भी कोई दोष नहीं।''

'बोलो प्रियतम' और 'तड़प' कविताओं के प्रश्न और प्रसंग विचलित करनेवाले हैं। कभी–कभी ऐसा होता है, प्रेमी एक दूसरे से प्रेम तो करते हैं, परन्तु एक दूसरे के नहीं हो पाते। कवयित्री गहरे भावों के साथ चिन्तन करती है और स्त्री मन की व्यथा व परिस्थितियों को लेकर पीड़ित होती है। 'मेरा मन', 'कविता लिखना', 'प्रेम पाँती', 'सर्द तन्हाई की रात' और 'प्रीत की कोई शर्त नहीं जैसी कविताएँ प्रेमी–प्रेमिका के संयोग–वियोग को मुखरित करती हैं। वह प्रतीक्षा करने के बजाए पहल करने में विश्वास करती है और अपने मन की भावनाओं, इच्छाओं को सामने रख देती है। विरह के क्षण को भी उन्होंने मुक्तसर होकर लिखा है और प्रेम में शर्त के विरुद्ध आवाज उठाती हैं।

प्रेम प्राचीन और सर्वप्रिय विषय है जिसको लेकर आदिम काल से लिखा जाता रहा है और आज भी इसका आकर्षण कम नहीं हुआ है। यह कभी कम होने वाला भी नहीं है, और मनुष्य, देव–दानव, जीव–जन्तु, प्रकृति सर्वत्र इसका आलोक पसरा रहता है। हर काल–खण्ड में प्रेम नित्य नवीन होकर उभरता है, इसको लेकर नए–नए प्रयोग होते रहते हैं और हर प्रेमी मन में प्रेम की अनुभूति के साथ ही सुख–शान्ति व चैन महसूस करता है। स्मिता गुप्ता ने अपनी कविताओं में प्रेम के हर रूप–स्वरूप को गहराई से समझा है और खुलकर लिखा है। भावदृश्य चित्रण में अत्यधिक खुलापन, रोचक तो है, परन्तु किसी विशेष छवि में बाँध सकता है। तुम्हारा आना वसंत, स्मृतियों की खिड़की, चलो हम इश्क करें जैसी कविताओं में उनकी संवेदनाएँ सशक्त तरीके से उभरती हैं, उनका मनमानी भर गया है और प्रकृति के नाना बिंब चित्रित होते हैं–

''और इश्क करने का सलीका सीखने के लिए
जंगल में चलें
नदी, पहाड़, पेड़ों से इश्क करना सीखें।''

इसी कड़ी में गुलमोहर, मेरे गुलमोहर, क्षितिज पर गुलमोहर जैसी कविताएँ कवयित्री के मनोभावों से जुड़ती है और किसी गहरी भाव संवेदनाओं में ले जाती है। 'प्रेम–जादू' कविता में प्रेम को वह किसी तिलस्म या जादू की तरह अनुभव करती है और हर पंक्ति में प्रेम जीवन्त हो उठता है। किसी भी नायिका की यह चरम स्वीकृति है जो पाठकों को आकर्षित करती है और झकझोर कर रख देती है। 'सुनो गंडक' संग्रह की अंतिम कविता है–'मेरी माँ' जिसमें उन्होंने अपने तरीके से माँ को, माँ की ममता को, उनके हुनर को, रीति–रिवाजों को अनेक प्रसंगों में समझा है, उनके ये सारे दृश्य यथार्थ है, जुड़ने–जोड़ने वाले हैं और इस तरह माँ पर यह एक सशक्त कविता है, वह लिखती है–'सचमुच कितनी अद्‌भुत है मेरी माँ।'

इस तरह यह संग्रह ध्यान खींचने वाला है, उनकी भाषा में हिन्दी, उर्दू, भोजपुरी के शब्द भरे पड़े हैं, हालाँकि अब इस तरह के मिश्रण को स्वीकृति मिल रही है, परंतु प्रवाह कहीं न कहीं बाधित होता ही है और शैली प्रभावित होती है। अक्सर कहा करता हूँ–हर साहित्यकार को खूब पढ़ना चाहिए, स्वाध्याय करना चाहिए, ताकि प्राचीन से लेकर समकालीन लेखन की दशा–दिशा ज्ञात हो और साहित्य की गहरी समझ हो।

समीक्षित कृति 'सुनो गंडक' (कविता संग्रह), कवयित्री स्मिता गुप्ता, प्रकाशक न्यूवर्ल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली।

समीक्षा

अब मैं बोलूँगी– एक खरी और जरूरी किताब

शैली बक्षी खड़कोतकर
भरत नगर, भोपाल
मो.– 9406929314

स्मृति आदित्य, मीडिया और साहित्य का सुपरिचित नाम, जब कहती हैं–'अब मैं बोलूँगी' तो सुनने वालों को सजग, सतर्क होकर सुनना होगा। शिवना प्रकाशन से प्रकाशित और हाल ही में पुस्तक मेले में विमोचित उनकी किताब 'अब मैं बोलूँगी' उन तमाम आवाजों की गूंज है, जो अब्बल उठाई नहीं जातीं या फिर दबा दी जाती हैं। इस किताब को पढ़ते हुए दुष्यंत कुमार बहुत याद आए– तुम्हारे पाँवों के नीचे कोई जमीन नहीं, कमाल ये है कि फिर भी तुम्हें यकीन नहीं।

मीठे लेकिन झूठे ख़्वाब से झकझोरकर उठाने का एहसास कड़वा हो सकता है, लेकिन उतना ही जरूरी भी। पत्रकारिता जगत में लंबी और उल्लेखनीय पारी के बाद अपने अनुभवों को स्मृति ने इस किताब में सँजोया है। नहीं... शायद सँजोना कहना गलत होगा। सलीके से, करीने से सजा–सँवार कर जो भी किया या कहा जाता है, उसमें कहीं बनावटीपन या दिखावा आ ही जाता है। जबकि यहाँ एक ईमानदार, मेहनती पत्रकार का सच्चा, अनगढ़, भावपूर्ण आवेग है, जो पाठक को बहा ले जाता है। इस किताब को पढ़ना साहित्य के राजपथ पर चलना नहीं है, उस पथरीली पगडंडी से गुजरना है, जहाँ से हममें से बहुत से लोग गुजरे हैं। उन खुरदुरे रास्तों के काँटों और पाँवों के छालों से कभी न कभी वास्ता पड़ा है।

डायरी विधा में लिखी यह किताब शुरू होती है, लगभग पंद्रह साल तन–मन से एक संस्थान से जुड़े रहने के बाद हुए मोहभंग और इस्तीफे से। फिर फ्लैश बैक में पच्चीस साल पहले पत्रकारिता की शुरूआत के संघर्ष से होते हुए मीडिया संस्थानों के वर्क कल्चर पर आती है। उनके अनुभव इतने खरे और सच्चे हैं कि पाठक संवेदनाओं के साथ शुरू से अंत तक जुड़ा रहता है। जैसे 31 जुलाई वाले दिन, जो नौकरी का आखिरी दिन था, वे लिखती हैं कि इतना हल्का महसूस कर रही थीं कि घर पहुँचकर 'कैडबरी गर्ल' की तरह नाची। इसमें पीड़ा और आक्रोश का जो अंडर करंट है, वह छू जाता है और पढ़ते हुए आँखों में अनायास नमी उतर आती है। बाई–लाइन और क्रेडिट के लिए जूझना, संपादकीय को हमेशा विज्ञापन और मार्केटिंग से कमतर आँकना, रिपोर्टिंग में आनेवाले खतरे, इन स्थितियों का सामना लगभग सभी मीडियाकर्मी करते हैं। पर महत्त्वपूर्ण यह कि कार्यस्थल पर जिस प्रतिस्पर्धा, इर्ष्या, असुरक्षा और शोषण की बात उठाई है, वह सिर्फ मीडिया तक सीमित नहीं है, बल्कि प्राइवेट सेक्टर में काम करने वाले अमूमन हर शख्स की कहानी है। इस स्तर पर किताब एक ऐसा आईना है, जिसमें बहुतों को अपने दर्द का अक्स नजर आएगा। यहाँ यह डायरी निजी अनुभव होते हुए भी सार्वभौमिक हो जाती है। और बकौल स्मृति यही उनकी किताब का उद्देश्य भी है कि ''अपने हिस्से का प्रतिरोध दर्ज करना ही चाहिए और शुरूआत कहीं से तो हो।''

कामकाजी लड़कियाँ तो अधिकांश जगह उनके साथ रिलेट कर सकती हैं। वे लिखती हैं, ''हम छोटी जगह की लड़कियाँ संकोच और स्वाभिमान के मिश्रण से बनी होती हैं, जिन्हें अक्सर हमारा अहम मान लिया जाता है... वास्तव में हम सही वक्त पर सही कदम न उठाने की पीड़ा से गुजर रही होती हैं।'' इससे उस समय और कुछ हद तक आज भी छोटे शहरों की अधिकांश लड़कियों के मन को कितना सही उकेरा है। पूरी किताब दरअसल एक सच्ची, संवेदनशील लड़की का अपने आत्मसम्मान को बचाते हुए संघर्ष का दस्तावेज है। गिरना, बिखरना, टूटना, फिर खुद को समेटकर स्वाभिमान के साथ खड़ा होना, इसी जिजीविषा का नाम स्मृति है और यही जीवन है।

अंतिम पन्नों में वे कहती हैं, 'मैं हर हाल में खुश रहने वाली लड़की बस इतना चाहती हूँ कि इस पेशे की 'नैतिकता' को यथासंभव बचाया जाए, ताकि आनेवाली पत्रकारीय नस्ल और फसल हरी रहे, लहलहाती रहे।'' चूँकि स्मृति बच्चों के बीच सम्माननीय और प्रिय मीडिया शिक्षक हैं, उनकी यह चिंता वाजिब है। पत्रकारिता में आनेवाली पीढ़ी के लिए यह एक जरूरी और मार्गदर्शक किताब हो सकती है। जो बच्चे मीडिया की चकाचौंध से आकर्षित होकर इस क्षेत्र में आते हैं, उन्हें पहले इस तरह की किताबें पढ़ना चाहिए, ताकि आनेवाले संघर्षों के लिए तैयार होकर इस क्षेत्र में कदम रखें। बच्चे यह भी सीखेंगे कि मुश्किल वक्त में परिवार और दोस्तों के अलावा कार्यक्षेत्र में कुछ भले लोग भी मिलते हैं, जिनसे दुनिया में उम्मीद कायम है।

स्मृति के इस साहस को सलाम, इस आशा के साथ कि इसे खूब स्नेह मिले, समर्थन मिले और उनकी आवाज में और आवाजें शामिल हों। फिर दुष्यंत कुमार के ही शब्दों में –

''सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।''

समीक्षा

तेज नारायण राय की कविताओं से गुजरना गाँव की पगडंडियों से होकर गुजरना है

डॉ. अशोक सिंह
जनमत शोध संस्थान, पुराना दुमका,
केवटपाड़ा दुमका 814101 (झारखण्ड)
मो. 9110072128

तेज नारायण राय ग्राम्य जीवन संस्कृति के चितेरे कवि हैं। वे गाँव से आते हैं, इसलिए उनकी कविताओं में गाँव की मिट्टी की सोंधी महक है। जितना सरल व सहज उनका स्वभाव है, उतनी ही सरल और सहज है उनकी कविताएँ भी।

तेज नारायण राय बिना किसी लाग–लपेट और शब्द जाल के वे सीधे–सीधे अपनी बात कह जाते हैं। उनकी कविताओं में काव्य–शिल्प हो या ना हो, लेकिन मानवीय जीवन की गहरी संवेदना उनकी कविताओं में मौजूद है। ग्रामीण जीवन का पूरा परिवेश और यहाँ की सामाजिक–राजनीतिक विडम्बनाओं को सामने लाने का प्रयास कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता है और उनका लेखकीय सरोकार भी। कवि जिस परिवेश में रहता है, उसका प्रतिबिंब उसकी कविताओं में दिखाई पड़ता है। तेज नारायण राय ऐसे ग्रामीण क्षेत्र से आते हैं, जहाँ जंगल, पहाड़ तो है ही, आसपास आदिवासी गाँव की बहुलता भी है। इसलिए उनकी कविताओं में कहीं आदिवासी बच्चे आते हैं, तो कहीं पहाड़ों का दुख। कहीं बकरी के बच्चे, तो कहीं गाँव का सूना चबूतरा दिखाई पड़ता है। कहीं जंगल–पहाड़ों का दुख, तो कहीं घर का कच्चा आँगन और उसमें पड़ोसी महिलाओं का जमघट और उसकी बतकही सुनाई पड़ती है। कहीं गाँव के चौराहे पर मौन धारण किये खड़ा बूढ़ा बरगद नजर आता है, तो कहीं साईकिल पर गाँव से रोज मजदूरी करने दूर शहर जाते मजदूर के चहरे पर उभरी थकान और घर–परिवार की भूख। उनकी कविताओं में कहीं गाँव की दलित लड़की की चीख सुनाई पड़ती है, तो कहीं गाँव से होकर रोज गुजरने वाली दसबजिया दीपक बस और उससे जुड़ा उसका सामाजिक सरोकार दिखाई पढ़ता है।

कवि न सिर्फ अपने आसपास के जन–जीवन और रोजमर्रा में घटित होनेवाली हर छोटी–बड़ी घटनाओं को बड़ी सूक्ष्मता और गहराई से देखता परखता है, बल्कि ऐसे समाज और परिवेश में रहते हुए जो कुछ भी वह जीता भोगता है और उससे जो अनुभव व अनुभूति जैसे होती है, उसे बड़ी सरलता व सहजता से वह अभिव्यक्त भी करता है।

कवि चिंतित है कि उसका गाँव अब गाँव नहीं रह गया। यहाँ अब शहरों से ज्यादा राजनीति हो रही है और वो भी कुछ इस तरह जिसको समझा पाना बहुत कठिन है। अपनापन भाईचारा और सामाजिकता गुम होती जा रही है। नैतिकता नाम की कोई चीज अब वहाँ नहीं बची। सबके सब अपने को श्रेष्ठ और एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे हुए हैं। ईर्ष्या–द्वेष और छल–प्रपंच चारों तरफ भरा पड़ा है। कुछ मुट्ठी–भर लोग जिसमें थोड़ी–बहुत सामाजिकता और नैतिकता बची है, वह आज समाज में उपेक्षित होकर हाशिए पर पड़े हैं। उन्हें पूछनेवाला कोई नहीं है। ठीक इसके विपरीत झूठ–फरेब और लोगों को धोखा देकर खुद को समाज का अगुवा बताने वाला व्यक्ति आज तेजी से आगे बढ़ रहा है। समाज में उसकी पूछ हो रही है और ऐसे में यह सब देख– सुनकर उसका कवि मन बेचैन हो उठता है। कवि की यही बेचैनी उनकी कविताओं में कई जगह दिखती है। ऐसे कठिन और विकट समय में कवि हाशिए पर उपेक्षित और हताश निराश खड़े लोगों की आवाज बनकर उनके साथ खड़ा दिखाई देता है।

'पहाड़ पर बसा गाँव' कवि तेज नारायण राय जी का चौथा कविता–संग्रह है। लिटिल बर्ड पब्लिकेशन नई दिल्ली से प्रकाशित यह पुस्तक साफ–सुथरी, सुंदर छपाई और आकर्षण आवरण वाली है जो पहली नजर में पाठकों को आकर्षिक करती है। 148 पेज की इस पुस्तक में तेज नारायण राय की कुल 60 कविताएँ शामिल हैं जिसमें लगभग दो तिहाई कविताएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण और पठनीय है। शेष एक तिहाई कविताएँ अपेक्षाकृत कमजोर तो हैं, लेकिन उसमें कवि की भावनाएँ निहित हैं। इस पुस्तक से गुजरना गाँव की पगडंडियों से होकर गुजरना है।

इस संग्रह की कविताओं से गुजरते हुए हम कह सकते हैं कि पिछले संग्रहों की तुलना में उनका या चौथा संग्रह पहाड़ पर बसा गाँव उनकी काव्य यात्रा का विस्तार है, जिसमें कवि निरंतर आगे बढ़ता दिखाई देता है। आशा की जानी चाहिए कि तेज नारायण राय अपने गाँव की जिस पगडंडियों पर वे बढ़ते चले जा रहे हैं, वह एक–न–एक दिन उन्हें उस राजमार्ग तक जरूर ले जाएगा, जहाँ से साहित्य की मुख्यधारा की सड़क गुजरती है।

पुस्तक का 'नाम पहाड़ पर बसा गाँव' (कविता संग्रह)
प्रकाशक–लिटिल बर्ड पब्लिकेशन, नयी दिल्ली
प्रकाशन वर्ष 2025, लेखक– तेज नारायण राय
पृष्ठ सं. 148, मूल्य 250/–

समीक्षा

उम्मीद की तरह लौटना तुम

विभा कनन (शिक्षिका)
कृष्ण राघवन नगर बोलिपलायम, मटुकरई
कोयम्बतूर, तमिलनाडु
फोन 8957637355

मानवीय संवेदनाओं, रिश्तों, पीड़ा और पुनर्जीवन की आकांक्षा का दस्तावेज पंकज सुबीर का कविता संग्रह 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' एक ऐसे समय में आया है, जब साहित्य और विशेषकर कविता से समाज की अपेक्षाएँ लगातार बढ़ी हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति, तकनीकी शोर और राजनीतिक–सामाजिक जटिलताओं के बीच कविता अपने लिए न केवल एक स्थान तलाश रही है, बल्कि मनुष्य के भीतर छिपी संवेदनाओं को जगाने का कार्य भी कर रही है। पंकज सुबीर का यह संग्रह इन्हीं मानवीय संवेदनाओं, रिश्तों, पीड़ा और पुनर्जीवन की आकांक्षा का दस्तावेज है।

'उम्मीद की तरह लौटना तुम' यह शीर्षक भावनात्मक आग्रह नहीं है, बल्कि जीवनदृष्टि का उद्घोष है। यहाँ उम्मीद का प्रतीक बहुआयामी है। यह संग्रह विछोह और संघर्ष के बाद पुनः उठ खड़े होने और भविष्य के प्रति आस्था का एक आयाम है।

पंकज सुबीर की आत्मीय भाषा, व्यक्तिगत संघर्ष के बावजूद लोक संवेदना से संपन्न है। वे कठिन शब्दावली या जटिल बिंबों में कविता को उलझाते नहीं, बल्कि सहज–सरल भावों के माध्यम से पाठकों के हृदय तक पहुँचते हैं। शैली संवादात्मक है, जिसमें बातचीत करते हुए वे सभी को अपने साथ समेट लेते हैं। उनकी कविताओं में गद्य–कविता का आभास वर्तमान आधुनिक हिंदी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

इस संग्रह में कई स्तरों पर विषयों का विस्तार स्पष्ट होता है। आत्मीय रिश्ते और प्रेम को वे निजी अनुभव के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व के सार के रूप में देखते हैं। प्रेम के बिना जीवन अधूरा है और उसकी वापसी ही 'उम्मीद की तरह लौटना' है। कविताओं में समकालीन समाज की विडंबनाएँ, अन्याय और विषमताएँ भी उपस्थित हैं, लेकिन कवि केवल निराशा व्यक्त नहीं करता, वह समाधान की दिशा में उम्मीद जगाता है।

प्रकृति के माध्यम से जीवन और संवेदना की गहराई को पकड़ना उनके साथ आत्मसात होना इस किताब की बहुधा कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रकृति कविताओं में प्रतीकात्मक ही नहीं, बल्कि आत्मीय साथी की तरह आती है। इन कविताओं में समय–समय पर पंकज सुबीर आत्म से संवाद करते हैं, जो पिता की अचानक अनुपस्थिति से उपजे प्रश्नों के उत्तर पा लेने की गहन आकांक्षा है। यह संवाद जीवन के मूल प्रश्नों जैसे मृत्यु, अस्तित्व, समय, स्मृति तथा भविष्य के लिए चिंतन की ओर ले जाता है।

पंकज सुबीर की कविताओं में एक प्रमुख गुण उनकी संवेदनात्मक गहराई है। वे मामूली–सी घटना या भाव को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वह बड़े जीवन–दर्शन में बदल जाता है। उदाहरण के लिए, बिछोह की पीड़ा को वे केवल आँसू और दर्द तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे पुनः मिलन और लौटने की आशा में ढाल देते हैं। उनका भाव–संसार एक तरलता लिए हुए है, जहाँ व्यक्तिगत दुख भी उनकी कविताओं में आकर सामूहिक अनुभव बन जाता है।

इस संग्रह में संबंधों की गरिमा और उनकी संवेदनाओं को विशेष स्थान मिला है, लेकिन यह संवाद केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि पूरे समाज में रिश्तों की उपस्थिति और उसकी भूमिका का भी सम्मान करता है। कवि इस रिश्ते को 'उम्मीद' के रूप में देखता है तथा जीवन में उजास और कोमलता लानेवाली
शक्ति के रूप में भी।

पंकज सुबीर की कविताएँ अपेक्षाकृत छोटी और गहन हैं। कहीं–कहीं उनमें सूक्तियों जैसी संक्षिप्तता है, तो कहीं गद्यात्मक विस्तार। यह विविधता संग्रह को एकरूपता से मुक्त कर देती है और पाठक को ताजगी का अनुभव कराती है। कविताओं का विचार और भाव का प्रवाह बाँध रखता है।

आज के समय में जब समाज हिंसा, अविश्वास और विघटन की ओर बढ़ रहा है. तब कविता का दायित्व है कि वह मनुष्य में मनुष्यता को बचाए रखे। पंकज सुबीर की कविताएँ यही करती हैं। वे बार–बार कहती हैं कि निराशा की कोई अंतिम मंजिल नहीं है, बल्कि आशा ही जीवन का स्थायी सत्य है। यही कारण है कि उनका काव्य–स्वर समकालीन परिदृश्य में सार्थक और प्रासंगिक है।

संग्रह पढ़ते हुए हम एक आत्मीय यात्रा पर निकल जाते हैं। अपने खोए हुए रिश्तों को याद करते हैं। कभी वर्तमान समाज की जटिलताओं से रू–ब–रू होते हैं. अंततः एक उजाले की ओर लौटते हैं। संग्रह की यह एक बड़ी उपलब्धि है कि वह भीतर तक छू लेता है और विचार मंथन के लिए प्रेरित करता है।

'उम्मीद की तरह लौटना तुम' केवल कविताओं का संग्रह नहीं, बल्कि एक मानसिक आध्यात्मिक यात्रा है। यह जीवन के अंधकार में एक मद्धिम लौ में जलते दीपक की तरह है जो आश्वस्त करता है कि चाहे कितनी ही कठिन घड़ियाँ आएँ, मनुष्य अंततः उम्मीद और प्रेम की ओर लौटेगा। पंकज सुबीर की कविताएँ पाठक के भीतर छिपी आर्द्रता को जाग्रत करती हैं और एक बेहतर मनुष्य बनने का आह्वान करती हैं।

पंकज सुबीर का यह संग्रह हिंदी कविता की परंपरा में उम्मीद, प्रेम और मानवीय संवेदना के स्वर को और प्रखर करता है। यह संग्रह आग्रह करता है प्रत्येक कठिनाई, हर विफलता और सर्वथा अँधेरे के बाद 'उम्मीद की तरह' हमें लौटना ही होगा। यह संग्रह इसलिए भी सार्थक है कि यह कविता सिर्फ सौंदर्य नहीं, बल्कि जीवन का साहस और दिशा पाने के लिए भी प्रेरित करता है।

पंकज सुबीर के नये कविता संग्रह 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.) मूल्य–300 रुपये, वर्ष–2025, पृष्ठ–184

समीक्षा

जाना है समय के पार

उषा पाण्डेय 'कनक'
कंदवा, वाराणसी,
9102883667

''अवरोधक हो जो प्रगति पथ का
वह वाद हमें स्वीकार नहीं
सौहार्द प्रेम के पौधे पर
उन्माद हमें स्वीकार नहीं
काँटों को फसल लिख दे,
ऐसा अनुवाद हमें स्वीकार नहीं।''

कवि या गीतकार की रचना उसके व्यक्तित्व का आईना होती है और वह अपने समय को अपने साथ लेकर चलता है, इस तरह कवि एक युग को साथ लेकर चल रहा होता है। ऐसे में वह किसी मत या वाद के मार्ग का अनुसरण नहीं करते हुए स्वयं का मार्ग बनाते हुए एक युगद्रष्टा के रूप में समाज के लिए कलम चलाते हैं, जो हर युग के लिए प्रासंगिक होते हैं उपर्युक्त गीतांश में यही भाव स्पष्ट हो रहा है।

गीतकार सूर्यप्रकाश मिश्र जी के गीतों की बात करें, तो आपकी सृजनात्मकता का आधार बृहद होता है, रचनाओं का संसार भी अपरिमित है। वह अपने समय की सूक्ष्मतम घटनाओं को स्वयं में जीते हैं, साथ ही घटना या चरित्र को अपनी पृथक् दृष्टि से रखने का प्रयास करते हैं। कवि या रचनाकार की संवेदना, समाज के प्रति उत्तरदायित्व ही उनकी रचना में दृष्टिगत होता है साथ ही उनका लेखन समाज के हर वर्ग को छूकर निकलता है, जिसमें प्रकृति की कोमलता भी दिखती है साथ ही मानव जीवन की जटिलता बड़े ही सरलता से बहती दिखती है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की पह पंक्ति इसको ही चरितार्थ करती है–''यह सही है कि कवि कल्पना सचेतन हृदय जितना ही
विश्वव्यापी होता है, उतनी ही उसकी रचना में गहराई से हमारी परितृप्ति बढ़ती है।''

मैं सूर्य प्रकाश मिश्र जी के गीत संग्रह 'जाना है समय के पार' की बात करें तो जिस प्रकार इनके अन्य गीत संग्रह अलग अलग धरातल पर अपनी मजबूत पकड़ के साथ पाठक के दिलो दिमाग में बिम्ब और प्रतीक के माध्यम से चित्र उपस्थित हुए असर डालते हैं, उनसे यह गीत संग्रह इस मामले में अलग है कि इसमें भिन्न भिन्न विषयों के गीत रखे गए हैं, यह इनका आठवाँ गीत संग्रह है, यह प्रतिष्ठित प्रकाशन लिटिल बर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित है।इसमें 104 पृष्ठों में 78 गीत संगृहीत हैं।

किसी भी पुस्तक का शीर्षक पुस्तक का प्रथम परिचय होता है और पाठक के हृदय में पढ़ने की उत्सुकता पैदा करता है।कवर पृष्ठ बहुत ही नायाब है तथा इसमें नैसर्गिक दृश्य बहुत ही खूबसूरती से उकेरा गया है जो इसके शीर्षक को काफी हद तक परिभाषित कर रहा है।

आरम्भ में ही कवि अपनी वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना में सम्पूर्ण जीव और मानव के हितार्थ समष्टि कामना करते हैं।

''हो जिससे कल्याण विश्व का ईश्वर से ऐसा वर माँगे
पोषण हो पर शोषण न हो सब में यही भावना जागे
जीव और वन दोनों मिलकर बन जाये जीवन के धागे
पशु पंछी के साथी हो ले मिलकर कदम बढ़ाये आगे।''

समाज के प्रमुख अवयव, जिनमें प्रमुख रूप से संस्कृति, सामाजिक समूह, सामाजिक मानदंड, सामाजिक भूमिकाएँ, सामाजिक स्तरीकरण और सामाजिक परिवर्तन में मानव स्वरूप कितना बदल गया इसी वास्तविकता को गीत के माध्यम से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं–

''दो हरे पेड़ सूखते देखे
कह रहे थे कि बेसहारा हूँ
एक का नाम खुशमिजाजी था
एक बोला में भाई चारा हूँ।
शान्ति की सूखती लता बोली
सुरमयी वक्त का इशारा हूँ।''

तनावपूर्ण जीवन–शैली में जिंदगी के लिए बेहद अहम हिस्से को खोता जा रहा तथा एकांत में जीने लगा है, भौतिकता के मृगमरीचिका में वास्तविक सुख भूलता जा रहा, यह विडंबना नहीं तो और क्या है, गीतकार सूर्य प्रकाश मिश्र जी की इस बात से चिंतातुर हैं।

मानवता का गुण ही सर्वोपरि गुण है, जिसमें सबके लिए कल्याण भाव उत्सर्जित और पल्लवित होते हैं। मिश्र जी ने अपने गीतों में अनुभव और संवेदना से मिश्रित जीवन की यात्रा को बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से इस तरह सज्जित किये हैं कि वह किसी एक का नहीं, वरन प्रत्येक के हृदय में समान गति एवं भाव में बहनेवाली धारा बनी है, जो कहीं दर्द में भींजती है, तो कहीं खुद को आश्वासन देती है।

'गोधूलि', 'घाट की शाम', 'सपनों का स्तूप', 'पीला पत्ता' और 'भार की हवा जैसे गीत हैं–

''वय में गोधूलि उतर आयी
ऐश्वर्य दूसरे लोक चला
बस शेष रह गयी परछाई
खेती की नींव में दिन डाले
कुछ सपने थोड़ी उम्मीदें
न्योछावर कर दी फसलों पर
सुख चैन भरी कितनी नींदें
पर लगा सभी कुछ डूब गया
जब फसल काट कर घर आई।''

उम्र के एक पड़ाव पर पहुँच वक्त का विनिमय करते हुए पूरे जीवन का अवलोकन कर इंसान अपना आकलन करता है। मित्र जी के गीतों की यही खासियत है दिल से लिखते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि यही तो सत्य है। एक वक्त आने पर व्यक्ति यही महसूस करता है। इस गीत में मानव मन के अतृप्त भाव को उकरते हुए कवि कुछ हताश जरूर दिखते हैं।

गीत संग्रह 'जाना है समय के पार' में मिश्र जी ने प्रतीकों और बिम्ब के रूप में पौराणिक चरित्र को लेकर गीतों की रचना की है, जो प्रयोगस्वरूप सफल प्रतीत हो रहा, साथ ही वर्तमान को उस चरित्र से जोड़ते हुए दिख रहे हैं। 'अंगुलिमाल', 'अभिमन्यु', 'अश्वत्थामा', 'विदुर', 'विश्वामित्र उवाच', 'बृहन्नला' और 'शिव'। अंगुलिमाल के चरित्र को सब जानते हैं, मगर वर्तमान में अंगुलिमाल स्वयं के गरिमा और संस्कृति का हनन, छल, द्वेष जैसे सभी विकृतियों में इस प्रकार ढल गया है कि बड़े शान से इसमें ही जी रहा है। कवि अपने विचारों को व्यक्त करने की पूरी आजादी होती है। वह किसी घटना को किस रूप में देखता है, यह उसकी स्वतंत्रता है और यही गुण भी है। उसकी संवेदनशीलता तथा घटना देखने के नजरिये के विराट क्षेत्र की यहाँ चर्चा कर रही हूँ 'अश्वत्थामा' नाम के शीर्षक गीत

महाभारत समाप्त होने के पश्चात् अश्वत्थामा ने पांडवों के पुत्रों और उत्तरा के गर्भ को ब्रह्मास्त्र से नुकसान पहुँचाया था। इससे कृष्ण ने उसे बहुत ही कष्टकारी रोग से ग्रस्त हो चिरकाल तक धरती पर भटकने का श्राप दिया और आज भी मान्यता है कि वह इसे भोग रहा है। सूर्यप्रकाश मिश्र जी ने इस एक गीत के माध्यम से कृष्ण पर सवाल उठाते हैं, कहते हैं कि छल से गुरु द्रोणाचार्य के मृत्यु के उपरांत क्या पुत्र को क्रोध आना सामान्य नहीं है और उसने अगर बदले की भावना से यह कुकृत्य किया, तो क्या गलत किया इस युद्ध में बहुत से नियम तोड़े गए थे, फिर रण में द्रोणपुत्र को भी पांडवों द्वारा वध करवा दिया होता–

''खण्डित होते सिद्धांतों का
हर कर्ज उतार दिया होता
कह देते कुंती पुत्रों से
उसको भी मार दिया होता।''

आगे बढ़ते हुए मिश्र जी के गीत 'वृहन्नला' को पढ़ते हुए रोमांचित और चमत्कृत हुए बिना पाठक नहीं रह सकता।

''प्रत्यंचा की ध्वनि से कह दो
अनुशासन की सीमा लाँघे
कह दो बाणों से बहुत हुआ
अब उठकर अपना हक माँगे
संदेश भेज दो लिप्सा को
विश्वास तुम्हारा खत्म हुआ।''

मन से हार गए व्यक्ति को उसके अपनी प्रशक्ति का आभास नहीं होता, वह स्वयं पहचान खोकर बेबस की भाँति जीने लगता है। समय की हार स्वीकार कर अपने सारे विवेकरूपी आयुध को अपने ऊपर लादे हुए अकर्मण्यता के लिबास के बोझ तले जीता है।

यह एक व्यक्ति ही नहीं, पूरा समाज, पूरा एक देश भी हो सकता है। ऐसे में जरूरत होती है एक आह्वान की, जो उसे उसकी शक्ति की पहचान करा सके, उसके अस्तित्व का बोध करा सके। गीत सांकेतिक रूप में यह भी प्रकट करता है कि मनुष्य विपरीत परिस्थिति में भी किस प्रकार अपने पक्ष में समय होने तक धीरज और संयम धारण कर उसे गुजर जाने जैसा दुष्कर वक्त जीने को बाध्य हो जाता है; क्योंकि उसे यह भलीभाँति ज्ञात है कि पुरुषार्थ के समय ही उसकी बुद्धि और शक्ति का प्रयोग सार्थक होगा। इसी संदर्भ में कवि कहते हैं –

''दिन आये शौर्य प्रदर्शन के
परिहास तुम्हारा खत्म हुआ
इस पल से ही है शुरवीर
संत्रास तुम्हारा खत्म हुआ।''

'आओ नदी', 'उत्तरार्ध', 'उत्तरों के चेहरे', 'चील', 'डरा हुआ सच' से होते हुए रचना 'नींव और दीमक' पर आकर रुक जाने को विवश हुए, जो आज की परिस्थिति को बयान करने में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, वह एकदम माकूल है, कवि ने इतनी गहरी दृष्टि से अपनी चिंता जाहिर की है। जिस धरा पर राम, कृष्ण, सीता, अहिल्या, लक्ष्मीबाई जैसे प्रणेता जन्म लिये, आज उसी भूमि को परिवर्तन की आड़ लेकर भ्रष्ट करने का दीमक लग चुका है–

''कुल दीमक का अति प्रसन्न है
कठिन भूमि भुरभुरी हुई है
मुक्त आचरण की परिभाषा
परिवर्तन की धुरी हुई है
उठो देश के पहरेदारो
हवा बहुत खुरदुरी हुई है।''

जिसे व्यक्तिगत विकास कह रहे हैं समाज तथा परिवार में मुक्तव्यवहार की स्वछंदता को बड़े आदर से स्वीकार कर लिया जा रहा उसके दुष्परिणाम हमें समग्र दिख रहे हैं। यह स्वतंत्रता कहीं विपरीत राह न अपना ले, इसके लिए भी कवि सजग होकर सचेत कर रहें हैं। 'पतझड़ हार गया', 'बनारस', 'बेटी का खत', 'भोर की हवा', 'युग परिवर्तन', 'विश्व के साथी'–ये गीत समय के साथ–साथ चलते हुए भावपूर्ण सृजन हुए हैं।

इस गीत संग्रह का शीर्षक गीत एक सजग आह्वान है, जो कई आयामों पर दृढ़ता से विजयघोष करती हुई लेखनी की धार से समय को बेचने और उसपर विजय की बात करते हुए उद्वेलित करता सृजन है, जो नव युग के उत्थान के लिए समर्पित कवि के भीतर की हुंकार है, यह एक बेजोड़ रचना है–

''लेखनी आयुध तुम्हारी
कम न आँको तीक्ष्ण है ये
जागरण का मंत्र घोषित
चक्रधारी कृष्ण है ये
पग उठेंगे वक्ष खोले
क्रांति की हुंकार लेकर।''

जिस कृष्ण ने समूचा महाभारत रच दिया। संसार को गीता जैसा ग्रंथ दिया। कवि या रचनाकार को मिश्र जी वहीं आदर देते हुए उसके बराबरी में लाकर खड़ा करते हैं।

इसी क्रम में गीत 'क्षणभंगुर' की चर्चा भी आवश्यक समझती हूँ जो चरित्र हमेशा से मस्तिष्क में कौंधता है कि उस प्रतिज्ञा का क्या औचित्य जब सामने अन्याय की सीमा पार हो रही हो, उस भीष्म प्रतिज्ञा का क्या मूल्य जहाँ सत्य पराजित हो रहा हो, नारी की अस्मिता का क्षरण हो रहा हो.. .इसलिए यहाँ इसके विरोध में जाकर मिश्र जी कहते हैं–

''मैं भीष्म नहीं क्षण भंगुर हूँ
निर्लिप्त काल के माथे पर
सच्चाई का नव अंकुर हूँ
मैं सीमित नहीं प्रतिज्ञा में
मेरा पथ बहुआयामी है
मन नायक है अधिनायक है।''

इस गीत में कवि का अपने समाज, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य से अडिग रह सत्यानुगामी चरित्र के दृढ़संकल्पित व्यक्तित्व का परिचय दे रहे जो समाज में जागरूकता का परिचायक भी है।

इस प्रकार सूर्य प्रकाश मिश्र द्वारा लिखा गया यह काव्य संग्रह कई मामलों में आज लिखे जा रहे गीतों में एक अलग पहचान के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है, जिसे पढ़कर पाठक कहीं भावुकता में बह जायेगा, तो कहीं मन यायावर हो समूचे विश्व का साथी बन आज के धर्मयुद्ध में विदुर या भीष्म नहीं, वरन युग परिवर्तन के सारथी बनने में वो कहाँ खड़ा है, यह स्वयं ही निर्णय करने को बाध्य हो जायेगा। भावपक्ष की प्रधानता के साथ कलापक्ष भी सराहनीय है, जिससे यह पाठकों के सम्मुख अपने प्रतीकों और बिम्ब के लिए सराही जायेगी, मिश्र जी को इसमें महारत हासिल हैं। मैं आशा करती हूँ कि यह गीत संग्रह साहित्यप्रेमी के पास जरूर चाहिए। इसके साथ ही गीतकार सूर्य प्रकाश मिश्र जी को इस गीत संग्रह की हार्दिक बधाई!

कवि सूर्य प्रकाश मिश्र
प्रकाशन–लिटिलबर्ड पब्लिकेशन,
प्रथम संस्करण–2022, मूल्य–280/–

समीक्षा

कार में खरोंच

दयानन्द जायसवाल
मो.–9931240303

शंकर दास जी, बाँका, बिहार का यह व्यंग्य काव्य संग्रह एक ऐसी रचना है जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करनेवाला एक विश्लेषणात्मक दस्तावेज है जो समाज की बुराइयों, भ्रष्टाचार और पाखंड पर हास्य या व्यंग्य के माध्यम से कटाक्ष करता है। इनके व्यंग्य में समाज की वस्तुगत परिस्थितियों में निहित अंतर्विरोधों और असंगतियों की ऐसी भाषायी अभिव्यक्ति है जो सहानुभूतिपूर्वक जनता का सिर्फ मनोरंज करना नहीं है, बल्कि एक समुदाय के प्रति तीखी कसक है। कृष्ण चंदर के मतानुसार–''व्यंग्य ही वो तेज नश्तर है जिससे लेखक और कवि समाज के नासूर के गंदे फोड़े खोलता है और उसे स्वास्थ्य, शक्ति और प्रगति की ओर बढ़ाने की चेष्टा करता है।''

व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें हास्य और आलोचना के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियों और पाखंडों पर कटाक्ष किया जाता है। व्यंग्यकार सीधे प्रहार करने के बजाय, मनोरंजन और हँसी के जरिए व्यवस्था की खामियों को उजागर करता है, ताकि पाठक या दर्शक उन समस्याओं को पहचान सकें और उन पर विचार कर सकें। इसका उद्देश्य समाज में सुधार लाना और लोगों को जागरूक करना होता है। व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त पाखंड और विसंगतियों को हास्यास्पद तरीके से प्रस्तुत करना है, ताकि लोग सचेत हो सकें। यह एक तरह का 'अहिंसक विरोध' है जो समस्याओं का समाधान भी सुझाता है।

हालाँकि 'कार में खरोंच' इनकी पहली रचना है, फिर भी इन्होंने श्रेष्ठ व्यंग्यकार की तरह तटस्थ रहकर जीवन और समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं के प्रति मन में उबल रहे आक्रोश की संयमित अभिव्यंजना की है। इस संग्रह में तैंतीस ऐसी व्यंग्य कथात्मक रचनाएँ हैं जिनके केंद्र में पीड़ा, शोषण, विकृति और अनाचार है तथा जातिगत, वंशगत , धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत विशेषताओं के फैले हुए जाल को छिन्न–भिन्न करने का एक अदम्य साहस भी है। संग्रह में 'कार में खरोंच' नामक शीर्षक व्यंग्य कथा भी है जो पुस्तक के नाम को दर्शाता है ,इसमें व्यंग्यकार शंकर दास जी पात्र के आरोपों को उघार कर उसके यथार्थ रूप को प्रकट करता है जहाँ पात्र के मिथ्या विचार उसके आत्मबोध में बाधक होते हैं। कहानी में छल–कौशल के सहारे विनोद की आड़ में प्रहार किया जाता है। लेखक की व्यंजना उस दवा जैसी है जो जीभ पर तो मीठी लगती है, लेकिन गले के नीचे उतरते ही उसका स्वाद कड़वा होकर व्यवहारिक मजाक बन जाता है। ईमानदारी से यह किया गया आक्षेप भले ही आक्रोशयुक्त हो, किंतु अपराधियों को उद्विग्न करने में यह उतना ही सफल होता है जितना विशेष कौशल–व्यंग्य से अपेक्षा होती है। 'जुगाड़' संग्रह की पहली रचना है जिसमें व्यंग्यकार खटकनेवाली असंगतियों, विसंगतियों तथा अंतर्विरोधों को प्रभावोत्पादक रूप से प्रकट करने का प्रयास किया है। इसमें कहीं–कहीं इन्होंने रूपक, उपमा तथा श्लेष के माध्यम से भी व्यंग्य किया है। व्यंग्य के चारित्रिक औदात्य की यह पहली शर्त है कि उसमें वास्तविकता का अंश हो और सत्य–स्थापना के प्रति व्यंगकार की आस्था हो जो हम इसमें पाते हैं। इसी में एक व्यंग्य 'साहित्यकार का पतन' नामक शीर्षक से किया गया है जिसमें दासजी ने रचनाकार की जीवनदृष्टि पर केंद्रित करुण स्थितियों की मार्मिकता को बड़ी गहराई से मर्मस्पर्शी साहित्यिक व्यंग्यात्मकता को परिलक्षित किया है। सच में व्यंग्य का चारित्रिक औदात्य व्यंगकार के दृष्टिकोण पर आधारित है। इनके तेजाबी–व्यंग्य में सभी प्रकार की दुर्बलताएँ तथा विकृतियाँ खाक हो जाती हैं। यहाँ तो इनके व्यंग्य आडम्बरों को उघार कर पाठकों के सम्मुख साहित्यकारों की आत्ममुग्धता के नग्न रूप को सामने लाकर उनके आत्मरति के भाव को आघात पहुँचाकर उन्हें कर्तव्यपथ पर लाने का प्रयास किया है। इसी प्रकार 'कोतवाल की दाढ़ी में तिनका', 'इतिहास में हास्य','नशाबंदी का बुद्धि विलास','लोकतंत्र की हत्या','दूरदर्शन का शेर' ,'थाना का माया लोक' आदि व्यंग्य रचनाओं में भी मनोविज्ञान की उपचेतना के रहस्यों को उद्घाटित कर मानव के आचरण को बदलने के लिए विवश कर समाज को स्वस्थ रूप अपनाने के लिए बाध्य करते हैं। सामाजिक समस्याओं की व्यापकता को लेकर इन्होंने अपने व्यंग्य साहित्य की सार्थकता को प्रतिपाद्य विषय बनाया है जिसमें असंगति, विषमता, अंतर्विरोध, शोषण, अनीति तथा सामाजिक एवं व्यक्तिगत मूल्यों के ह्रास पर तीखा आक्रोश है। इसके अतिरिक्त 'बिल्ली चली हज को', 'बात दगाबाजों की', 'जंगल में मोर नाचा किसने देखा' , 'हारे को हरिनाम' ,'कुंभं शरणं गच्छामि','कोप भवन' आदि रचनाओं में जीवन की पतोन्मुखता, विकृति, मूल्यहीनता आदि बहुत–सी विभिन्न स्थितियों के बड़े प्रभावी चित्र मौजूद हैं जो हमारे चिर–परिचित अनुभवों को फिर से ताजा करते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह प्रतीक शैली का सहारा लिये बिना यथातथ्य शैली में लिखा गया है। इनके लेखन में समाज का सत्य, प्रहार, और सपाटबयानी तीनों का संगम है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं इनका यह व्यंग्य संग्रह 'कार में खरोंच' विसंगतियों का एक दस्तावेज है जो अपनी तीव्रतम क्षमतावाली व्यंजनात्मकता के साथ सदा समय के अन्तर्विरोधों को सामने लाने का दायित्व निर्वहन करता है। आज यथार्थ के ऊपर इतने चमकदार आवरण चढ़ाए जा चुके हैं कि वास्तविकता की पहचान मुश्किल हो गई है। ऐसी स्थिति में व्यंग्य ही एक ऐसी विधा है जो समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और शोषण की किलेबंदी को तोड़कर यथार्थ की तश्वीर जनता के सामने उपस्थित करता है।

'कार में खरोंच' पुस्तक सृजन के लिए लेखक शंकर दास जी को हार्दिक बधाई एवं सफलता की शुभकामनाएँ।

लेखक से संपर्क– 7667361713, प्रकाशक–विकल्प प्रकाशन, दिल्ली –90

समीक्षा

बच गई हैं चिड़ियाँ

दयानन्द जायसवाल
मो.–9931240303

'बच गई हैं चिड़ियाँ' डॉ. अंजना वर्मा, भोगनहल्ली, बैंगलुरू का यह गीत–संग्रह रचनाधर्मिता की वह स्व–भाव है जिनमें अदब, आवेग और एक उमंग तरंगित मन का उत्साह भर नहीं, समय की विद्रूपताओं से उनकी सीधी मुठभेड़ और युगीन यथार्थ का वह खरा बोध भी है, जिसे जन और उसके जीवन–सन्दर्भों के बीच से उन्होंने पाया और अर्जित किया है।

डॉ अंजना वर्मा खास कवि, कथाकार एवं गीतकार हैं, जिनकी अबतक पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी रचनाओं के अनुवाद अंग्रेजी के साथ–साथ मराठी, कन्नड़, मलयालम, असमिया तथा नेपाली भाषाओं में हो चुके हैं। ये बिहार विश्वविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष रह चुकी हैं। डॉ. वर्मा जिनसे गीत–कविता को व्यापकता मिली है और जिनको सुनते हुए लय और राग–बोध में अन्तर्मन डूबता चला जाता है, इनको पाठकों, श्रोताओं और संवेदनशील जनता का अजस्र स्नेह और आदर मिला है। इनके गीतों में सामाजिक बदलाव की आकांक्षा है, जनजागरण की चेतना है, जन–संघर्षों के वर्णन हैं और साथ ही नए समाज के सपने भी हैं। बिम्बों प्रतीकों और संकेतों के सहारे अर्थ का विस्तार है।

''चलते–चलते ठहर गए हम / दुनिया आगे चली गई/
यह अनजाना लोक नया है/अपनी दुनिया कहाँ गई/
आँगन घर से लुप्त हो गया/ कुनबे कैसे बिखर गए/
ममता, रिश्ते–नाते शब्दों/ के मतलब भी बिसर गए/
ज्ञान के बोझे ढोते बच्चे/ उनकी मस्ती कहाँ गई?/
यह अनजाना लोक नया है/ अपनी दुनिया कहाँ गई।''

मानव बचपन से ही विभिन्न आंतरिक भावनाओं प्रेम, घृणा, क्रोध, द्वेष और ईर्ष्या आदि का अनुभव करता आ रहा है और इन सभी भावों का व्यवहार रस के अंतर्गत होता है। गीत–संगीत कला भारतीय संस्कृति की आत्मा है। भारतीय संस्कृति के आदि तथा इसके उद्भवकाल से ही संगीत इसका अभिन्न अंग रहा है। वर्तमान समय में व्यवस्था तनावयुक्त एवं प्रतियोगी सामाजिक परिस्थितियों में गीत–संगीत ही एक ऐसी कला है, जो मानव के आहत मन व आत्मा को क्षणभर के लिए सही शान्ति व सुख प्रदान करती है, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के साथ–साथ उसे पारलौकिक तत्त्वों का समावेश करके उसे सर्वांगीण विकास का कारण बनती है।

''कौन कहता है कि आता / है नहीं मधुमास अब
गाँव में फैली है खुशबू / महकती है साँस अब
शीत की चादर हटाकर / पेड़ पौधे जग गए
आम–लीची के बगीचे / मंजरों से भर गए
पाखियों की बोलियों से / गूँजता आकाश अब।''

संवेदना का सैलाब जब हृदय की दीवार को तोड़कर रचनाकार को झकझोर देता है, तो उस भावुक अनुभूति को शब्द देने के लिए व्यग्र हो उठता है, लेकिन उस क्षण की व्यग्रता शब्दरूप पाने के लिए रचनाकार से कुछ विशेष अपेक्षा करती है। इसके लिए उसे जीवन–जगत का व्यापक अनुभव होना चाहिए। निजी अनुभूतियों में लोकानुभूति की स्थापना रचनाकार की विराटता का परिचायक है। प्रकृति की तरह निश्छल और वेदना की तरह भावुक हृदय ही गीत की कड़ियों में समय सन्दर्भ को जोड़ सकता है, अन्यथा वह निजता का एकांत आलाप बनकर रह जाता है, जिसे सुना तो जा सकता है और पढ़ा भी, लेकिन उसे पाठक या श्रोता की अनुभूतियों की वह संगति नहीं मिल सकती है, जो उसे लोक व्यापक परिधि तक ले जाती है। कल्पना जब जीवन–कथा बन जाती है, तभी वह सहृदय के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करती है। डॉ अंजना वर्मा के गीतों में जीवनकथा और व्यापक लोकानुभूति का मणिकांचन संयोग मिलता है। 'ये बच्चे किसे नजर आते हैं' इनकी ही यह एक रचना है–

''नाक पर रूमाल रख लोग गुजर जाते हैं
कचरे पर बच्चे ये किसे नजर आते हैं
इनके लिए कूड़ा ही ओढ़ना–बिछौना है
कचरे से रोटियाँ जोड़–जोड़ जीना है
क्या हुआ जो आदमी नहीं कहे जाते हैं
हैं कई सवाल अभी देश के विकास के
खुल रहे हैं रोज–रोज बंद हुए रास्ते
बीच में व्यर्थ प्रश्न नहीं किये जाते हैं..।''

इस प्रकार इनके अजस्र विचार और संवेदनाओं से गीत भरे हैं, 'मेरे गीत तुम्हारे मीत' में कहती हैं–

''ये जो मैंने गीत रचे हैं
सदा तुम्हारे पास रहेंगे, कितनों का संबल बनकर तो
कितनों की बन आस रहेंगे, अपनी साँसे दे–देकर के
अक्षर का संसार रचा है, धड़कन बीच बसाकर उसमें
जीवन का संचार किया है, वे मिट्टी से उगी फसल हैं
लहू में घुलकर साथ रहेंगे, ये जो मैंने गीत रचे हैं
सदा तुम्हारे पास रहेंगे...।''

इनका प्रकृति प्रेम, लोक जीवन और लोक संस्कृति के तत्त्व इनके गीतों में घुल मिलकर मूल्य चेतना की शक्ल धारण कर लेते हैं–

वो जमीं का एक टुकड़ा / यूँ बुलाता है मुझे
जैसे बचपन का पुराना / कोई साथी हो
वह खुला आकाश, खुशबू / और पंछी बोलते
याद आते हैं सभी / जैसे बरती हों
प्यार करना जानते हैं / फूल–पत्ते, पेड़ भी
बाँध लेती हैं हवाएँ / अपने आँचल में
लीचियों के पेड़ ऐसे / याद आते हैं मुझे
डालियाँ मायूस उनकी / ज्यों बुलाती हों...।''

इनके गीतों को पढ़ते हुए कभी आकाश की उर्ध्वगामिता एवं ऊँचाई को छूने का अनुभव होता है, तो कभी सागर की गहराई का अहसास। कहीं विरह की वेदना मिली, तो कहीं उल्लास की चरम सीमा, कहीं कल्पनाओं की उड़ान है, तो कहीं यथार्थ से साक्षात्कार। कहीं भौतिकता का धरातल, तो कहीं आध्यात्मिकता का आकाश। कहीं महान राष्ट्रीय सांस्कृतिक गाथाओं द्वारा स्वाभिमान, साहस तथा शौर्य आदि भावनाओं को जागृत करते हुए स्नेह एवं सम्मान से जीवन जीने का चित्र है, तो कहीं नारी की प्रेममय गरिमा के दर्शन।

''मन साँझ–सा बोझिल है / तुम बनके सुबह आओ
मेरे मन के आँगन को / तुम रोशन कर जाओ
गहराता जाता है / हर पल ये अँधेरा
तन्हाई के नागों ने / इस जान को है घेरा
तुम चाँद बन आओ / थोड़ी चाँदनी दे जाओ
मन साँझ–सा बोझिल है/ तुम बनके सुबह आओ...।''

इस प्रकार इनके गीत संग्रह में 61 गीतों का समावेश है जो जीवन के विभिन्न अनुभवों का एक प्रामाणिक दस्तावेज और उनके विचारों का गुलदस्ता है।

कवयित्री डॉ. अंजना वर्मा को हार्दिक बधाई एवं सफलता की अशेष शुभकामनाएँ।

श्रीसाहित्य प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली–93
कवयित्री का संपर्क सूत्र– 8210777500

आलेख

इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी

गौरी शंकर वैश्य 'विनम्र'
लखनऊ
दूरभाष 09956087585

अंतरजाल अर्थात् इंटरनेट शब्द को आज सभी लोग जानते हैं। बच्चे हों या बड़े सभी इसका प्रयोग करना अच्छी तरह से जानते हैं। इंटरनेट ने आज हमारी बहुत–सी मुश्किलों को आसान कर दिया है, जिसके कारण हमें हर कार्य बहुत सरल लगता है। इंटरनेट मनुष्य को विज्ञान द्वारा दिया गया एक सर्वश्रेष्ठ उपहार है।

वर्तमान युग सूचना और संचार की तीव्रतम गति वाला युग है। इसे डिजिटल युग, सूचना क्रांति का युग अथवा इंटरनेट का युग भी कहा जाता है। आज विश्व की लगभग आधी से अधिक जनसंख्या इंटरनेट से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़ी हुई है। इंटरनेट ने न केवल मानव जीवन की कार्यप्रणाली, सोच और जीवनशैली को प्रभावित किया है, अपितु भाषाई परिदृश्य को भी नया आयाम प्रदान किया है। अंग्रेजी भाषा लंबे समय तक डिजिटल संसार पर छाई रही; परंतु पिछले दो दशकों में हिन्दी ने इंटरनेट की दुनिया में उल्लेखनीय स्थान अर्जित किया है।

हिन्दी अब केवल भारत की जनभाषा नहीं रहीं, अपितु इंटरनेट की वैश्विक भाषा के रूप में अपनी पहचान बना रही है। इसका विस्तार, प्रयोग, तकनीकी विकास और सामग्री की गुणवत्ता ये सभी संकेत करते हैं कि आनेवाला समय 'डिजिटल हिन्दी' का युग होगा।

हिन्दी और इंटरनेट का आरंभिक दौर :

इंटरनेट के प्रारम्भिक वर्षों में हिन्दी की स्थिति अत्यंत सीमित थी। 1990 के दशक में जब भारत में इंटरनेट सेवाएँ प्रारम्भ हुई, तब अधिकांश वेबसाइटें और सॉफ्टवेयर अंग्रेजी में थे। हिन्दी फॉन्ट की समस्या, यूनिकोड का अभाव और तकनीकी असंगति के कारण हिन्दी उपयोगकर्ता सीमित दायरे में ही सक्रिय थे।

सन 2000 के आसपास यूनिकोड (न्दपबवकम) के आगमन ने हिन्दी को डिजिटल रूप में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम प्रदान किया। इसके साथ ही ब्लॉगिंग, समाचार वेबसाइटों और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर हिन्दी का प्रसार तीव्रता से हुआ। गूगल, फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब तथा विकिपीडिया जैसे वैश्विक प्लेटफॉर्मों ने हिन्दी इंटरफेस और कंटेंट को समर्थन देकर इस प्रवाह को और गति दी।

हिन्दी का यश इंटरनेट के माध्यम से दिनोंदिन बढ़ रहा है। ब्लॉग, वेबसाइट और सोशल मीडिया पर हिन्दी ने मजबूत पकड़ बनायी है। सच तो यह है कि नेट ने हिन्दी को नए आयाम दिए हैं। हिन्दी की वैश्विक पहुँच निर्मित करने में इंटरनेट का अप्रतिम योगदान है। यह माध्यम अन्य भाषा–भाषियों के साथ हिन्दी को जोड़ने के लिए सेतु का कार्य कर रहा है।

हिन्दी सामग्री का विस्फोट डिजिटल क्रांति का नया अध्याय

सन् 2010 के बाद से हिन्दी में ऑनलाइन सामग्री का विस्फोट हुआ। स्मार्टफोन क्रांति और सस्ती इंटरनेट सेवाओं (विशेषत: जियो नेटवर्क के आगमन) ने ग्रामीण और अर्धशहरी भारत में इंटरनेट की पहुँच को सर्वसुलभ बना दिया। परिणामस्वरूप हिन्दी उपभोक्ता संख्या लाखों से बढ़कर करोड़ों में पहुँच गई।

कई शोधों के अनुसार :

गूगल और केपीएमजी (2017) की रिपोर्ट 'प्दकपंद स्ंदहनंहमे. क्मपिदपदह प्दकपंश्े प्दजमतदमज' के अनुसार–

हिन्दी इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की वृद्धि दर अंग्रेजी उपयोगकर्ताओं से लगभग 90: अधिक है।

जंजपेजं (2024) के आँकड़ों के अनुसार, भारत में 75 करोड़ से अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में से लगभग 45 करोड़ उपयोगकर्ता भारतीय भाषाओं में सामग्री पढ़ते हैं, जिनमें हिन्दी का हिस्सा लगभग 60: है।

यह आँकड़ा यह स्पष्ट करता है कि हिन्दी अब इंटरनेट के 'केंद्र' में है, 'परिधि' पर नहीं।

डिजिटल प्लेटफॉर्मो पर हिन्दी का प्रसार :

1. सोशल मीडिया पर हिन्दी

फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर (अब एक्स) और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्मो ने हिन्दी को अभूतपूर्व मंच दिया है।

फेसबुक पर हिन्दी पेजों की संख्या लाखों में है, जिनके करोड़ों अनुयायी हैं।

यूट्यूब पर हिन्दी कंटेंट निर्माताओं ने अंग्रेजी चैनलों की तुलना में कहीं अधिक दर्शक जुटाए हैं। उदाहरणस्वरूप, टेक्निकल गुरुजी, आशू भाम्बरे, भुवन बाम (बीबी की वाइन्स) जैसे रचनाकारों

ने हिन्दी में सामग्री प्रस्तुत कर अंतर्राष्ट्रीय लोकप्रियता अर्जित की है।

ट्विटर पर हिन्दी हैशटैग (रुहिन्दी, रुभारत, रुजयहिन्द) लाखों बार ट्रेंड करते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल माध्यम ने हिन्दी को लोक संवाद का प्रभावशाली उपकरण बना दिया है।

2. समाचार और पत्रकारिता

आज लगभग सभी प्रमुख समाचार पत्र जैसे दैनिक भास्कर, अमर उजाला, हिन्दुस्तान, अहा जिंदगी, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता –अपनी पूर्ण रूप से हिन्दी वेबसाइट चला रहे हैं। ये पोर्टल वास्तविक समय (तमंस.जपउम) समाचार प्रसारण में अंग्रेजी मीडिया को टक्कर दे रहे हैं। हिन्दी की अनेक साहित्यिक पत्र.पत्रिकाएँ विदेशों में प्रकाशित हो रही हैं, जो नेट के माध्यम से विश्व–भर में पढ़ी जा रही हैं।

इसके अतिरिक्त इनडिपेंडेंट हिन्दी, बीबीसी हिन्दी, डीडब्ल्यू हिन्दी, आज तक डिजिटल, छक्ज्ट इंडिया जैसे पोर्टल विश्वसनीय और त्वरित हिन्दी पत्रकारिता का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

3. ब्लॉग और वेब साहित्य :

हिन्दी ब्लॉगिंग ने इंटरनेट पर साहित्यिक सृजन का नया अध्याय खोला। ब्लॉगस्पॉट, वर्डप्रेस, मीडियम जैसे प्लेटफॉर्मों पर हिन्दी लेखकों ने कविता, कहानी, समीक्षा और व्यंग्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। आज एक लाख से भी अधिक ब्लॉग हिन्दी में उपलब्ध हैं। 20 से अधिक खोज इंजन हिन्दी में उपलब्ध है। हिन्दी के उदीयमान लेखक–लेखिकाओं के लिए इंटरनेट 'लांचिंग पैड' का काम कर रहा है, और तो और, विश्व स्तर पर श्रीरामचरितमानस, भगवद्गीता जैसी लोकप्रिय पुस्तकें इंटरनेट पर पढ़ी जा रही हैं।

रवीन्द्र प्रभात, अनूप शुक्ल, समीर लाल.. कृष्ण कुमार यादव (डाकिया डाक लाया), अभिव्यक्ति, हिन्दी समय जैसे ब्लॉगों ने डिजिटल हिन्दी साहित्य को स्वर दिया।

हिन्दी सर्च इंजन और तकनीकी नवाचार :

हिन्दी के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए तकनीकी संस्थान और कंपनियाँ भी हिन्दी भाषा–तकनीक के विकास में जुटी हैं।

गूगल ट्रांसलेट, गूगल इनपुट टूल्स और वॉयस टाइपिंग ने हिन्दी में टाइपिंग और अनुवाद को सहज बना दिया है।

AI आधारित हिन्दी चैटबॉट्स, स्पीच रिकग्निशन, और मशीन लर्निंग मॉडल्स अब हिन्दी में भी कार्यरत हैं।

भाषा संसाधन केंद्र (IIT मद्रास, IIT हैदराबाद) तथा सी–डैक (C-DAC) जैसे संस्थान हिन्दी के लिए प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) तकनीक विकसित कर रहे हैं।

इससे यह प्रतीत होता है कि हिन्दी केवल संप्रेषण की भाषा नहीं रही, अपितु यह तकनीकी प्रयोगशाला की भाषा भी बन चुकी है।

शोधात्मक दृष्टि से हिन्दी इंटरनेट की स्थिति :–

हिन्दी के डिजिटल प्रसार पर अनेक संस्थागत शोध हुए हैं–

1. इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (IAMAI) की रिपोर्ट (2023) के अनुसार, भारत में 70: नए इंटरनेट उपयोगकर्ता भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता दे रहे हैं, जिनमें हिन्दी का प्रमुख हिस्सा है।

2. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (OUP) के अध्ययन के अनुसार, हिन्दी में लिखित ऑनलाइन सामग्री प्रतिवर्ष 30: की दर से बढ़ रही है।

3. गूगल इंडिया के आँकड़े दर्शाते हैं कि हिन्दी में खोज (search) करने वालों की संख्या अंग्रेजी खोजकर्ताओं से अधिक गति से बढ़ रही है।

शोध निष्कर्ष यह संकेत देते हैं कि हिन्दी डिजिटल अर्थव्यवस्था का प्रमुख घटक बन रही है।

हिन्दी और डिजिटल शिक्षा

ऑनलाइन शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी ने ज्ञान–वितरण का लोकतंत्रीकरण किया है।

Byju's, Unacademy, Vedantu, Khan Academy Hindi जैसे प्लेटफॉर्मों ने हिन्दी में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक सामग्री उपलब्ध कराई है।

स्वयं दीक्षा तथा राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय जैसे सरकारी पोर्टल हिन्दी में शिक्षा संसाधन प्रदान कर रहे हैं।

यूट्यूब पर लाखों शैक्षिक चैनल हिन्दी माध्यम से विज्ञान, गणित, प्रौद्योगिकी, इतिहास और साहित्य का अध्यापन कर रहे हैं।

इससे हिन्दी भाषा के विद्यार्थियों के लिए ज्ञान की पहुँच सुलभ और समान हुई है।

हिन्दी ई–कॉमर्स और व्यवसाय की भाषा के रूप में

आज अमेजन इंडिया, फ्लिपकार्ट, मेकमायट्रिप, ओला और जोमैटो जैसे ऐप्स हिन्दी इंटरफेस और वॉइस कमांड को समर्थन दे रहे हैं।

ग्रामीण एवं अर्धशहरी उपभोक्ता हिन्दी में उत्पाद खोजने, ऑर्डर करने और समीक्षा लिखने में सहज हैं।

नीति आयोग और भारतीय उद्योग परिसंघ (CII) के अनुसार, आनेवाले वर्षों में हिन्दी आधारित डिजिटल उपभोक्ताओं की संख्या भारत के कुल ऑनलाइन उपभोक्ताओं का दो–तिहाई हिस्सा होगी।

इस दृष्टि से हिन्दी अब डिजिटल अर्थव्यवस्था की व्यवहारिक भाषा बन चुकी है।

डिजिटल साहित्य और सृजन की नई धारा

इंटरनेट ने हिन्दी साहित्य को नई अभिव्यक्ति दी है। ई–पुस्तकें, ऑनलाइन पत्रिकाएँ, ऑडियो स्टोरी प्लेटफॉर्म और पॉडकास्ट माध्यमों ने हिन्दी साहित्य को नई पीढ़ी तक पहुँचाया है।

प्रभा खेतान फाउंडेशन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिंदी बुक क्लब आदि संस्थाएँ डिजिटल पाठन को प्रोत्साहन दे रही हैं।

Audible, Pocket FM, Kuku FM जैसे प्लेटफॉर्मों पर हिन्दी में लाखों श्रोतागण कहानी और कविता सुनते हैं।

अमेजन किंडल हिन्दी ई–बुक्स और गूगल बुक्स हिन्दी संस्करण ने लेखकों को वैश्विक पाठकवर्ग से जोड़ा है।

इससे हिन्दी सृजन का डिजिटल पुनर्जागरण हुआ है।

चुनौतियाँ : डिजिटल हिन्दी के समक्ष समस्याएँ

हिन्दी के डिजिटल विस्तार के साथ कई चुनौतियाँ भी हैं–

1. शब्दावली और मानकीकरण की समस्या : तकनीकी शब्दों के लिए समानार्थी हिन्दी शब्दों का अभाव या भ्रमजनक उपयोग प्रचलित है।

2. भाषाई विविधता : हिन्दी के अनेक क्षेत्रीय रूप (अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली आदि) के कारण एक समान तकनीकी मानक बनाना कठिन है।

3. गुणवत्ता की कमी : सोशल मीडिया पर सामग्री की मात्रा तो बढ़ी है, परन्तु भाषिक शुद्धता और अभिव्यक्ति की गरिमा में गिरावट आई है।

4. तकनीकी निर्भरता : अधिकांश सॉफ्टवेयर अंग्रेजी आधार पर निर्मित हैं, जिससे हिन्दी के लिए अनुकूलन सीमित रहता है।

5. शोध और नवाचार की न्यूनता हिन्दी भाषा–तकनीक पर विश्वविद्यालय स्तर पर पर्याप्त शोध नहीं हो रहा है।

सरकारी और संस्थागत प्रयास

भारत सरकार ने हिन्दी को डिजिटल माध्यम में सशक्त बनाने हेतु कई योजनाएँ प्रारम्भ की हैं–

राष्ट्रीय भाषा प्रौद्योगिकी मिशन के अंतर्गत हिन्दी में अनुवाद, वाक पहचान तथा शब्दकोश निर्माण के कार्य हो रहे हैं।

डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के तहत सभी सरकारी पोर्टलों में हिन्दी इंटरफेस अनिवार्य किया गया है।

भारतमाता, आरोग्य सेतु जैसे सरकारी एप्स हिन्दी में संचालित हैं।

विश्व हिन्दी सम्मेलन (2023) में डिजिटल युग में हिन्दी की भूमिका विषय को प्रमुखता दी गई।

इन प्रयासों ने हिन्दी को नीतिगत और तकनीकी दोनों स्तरों पर सशक्त किया है।

डिजिटल विश्व में हिन्दी का संभावित स्वरूप

विश्लेषणात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि आने वाले दशक में हिन्दी इंटरनेट की प्रमुख भाषा बनने की क्षमता रखती है। गूगल, मेटा, माइक्रोसॉफ्ट, ओपन ए आई जैसी कंपनियाँ अब अपने उत्पादों में हिन्दी को प्राथमिकता दे रही है।

हिन्दी भाषा में AI अनुवादक, वॉयस असिस्टेंट्स (जैसे गूगल असिस्टेंट, एलेक्सा) और नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग की प्रगति दर्शाती है कि मशीनें अब हिन्दी 'समझने' लगी है।

भविष्य में जब Web 4.0 और AI आधारित मेटावर्स साकार होंगे, तब हिन्दी उपयोगकर्ता न केवल उपभोक्ता होंगे, अपितु डिजिटल संसार के सृजनकर्ता और निर्णायक भागीदार भी बनेंगे।

निष्कर्षत: हिन्दी का इंटरनेट–सफर केवल भाषा का विस्तार नहीं, अपितु सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रतीक है। इस यात्रा ने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि तकनीक को अपनी भाषा में ढाला जाए, तो ज्ञान, संचार और अर्थव्यवस्था के नए द्वार खुलते हैं। आज हिन्दी बाजार की भाषा बन चुकी है, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भाषा बन चुकी है। साहित्य की भाषा यह पहले भी थी और आज भी है। इंटरनेट से जुड़े उस भ्रम को भी हिन्दी तोड़ चुकी है, जो इस तकनीक पर अंग्रेजी के वर्चस्व को लेकर पश्चिमी देशों एवं अमेरिका के लोगों ने पाल रखा था।

आज हिन्दी इंटरनेट सूचना का माध्यम है, अभिव्यक्ति का मंच है, व्यवसाय की भाषा है और शिक्षा का सेतु भी है।

आवश्यक है कि हम हिन्दी में गुणवत्तापूर्ण सामग्री तैयार करें, भाषा की शुद्धता बनाए रखें और तकनीकी शोध को प्रोत्साहित करें, जिससे हिन्दी विश्व मंच पर सशक्त और आत्मनिर्भर भाषा बन सके।

डॉ. रघुवीर शर्मा का कथन, विश्व में हिन्दी की यशकीर्ति का बखान करता है – ''भाषा वह पुल है जो संस्कृति को तकनीक से जोड़ता है और हिन्दी इस पुल की सबसे मजबूत कड़ी बन चुकी है।''

जीवनी साहित्य

सर्जक और सर्जना के पक्षधर

अश्विनीकुमार दूबे
सेक्टर आर, महालक्ष्मी नगर,
इंदौर– (म.प्र.)
मो.– 9425167003

अशोक बाजपेयी का साहित्य में आगमन ऐसे समय में हुआ, जब संगठन और विचारधारा का वर्चस्व छाया हुआ था। हर नया कवि, लेखक और आलोचक या तो अपने प्रारंभ से संगठन में था या संगठन और विचारधारा से जुड़कर अपना भविष्य सँवारना चाहता था। ऐसे समय में एक सोलह साल का युवक, सागर जैसे कस्बाई शहर में साहित्य और कलाओं को अपने ढंग से जानने–समझने की कोशिश करता है।

पारिवारिक माहौल वैसा ही था, जैसा आम मध्यवर्गीय परिवारों में होता है। पिता चाहते थे कि बेटा प्रशासनिक सेवा में जाए। माँ का बेटे पर अटूट विश्वास कि वह जो करेगा, ठीक ही करेगा। ताऊ आनंद मोहन वाजपेयी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शिष्य रहे और निराला प्रसाद, जानकी वल्लभ शास्त्री से परिचित थे। बचपन में उनसे ही पुस्तकें पढ़ने का उत्साह मिला। बड़ी चचेरी बहन, मनोरमा साहित्य में रुचि रखती थी। स्कूल के एक अध्यापक लक्ष्मीधर आचार्य के सान्निध्य से साहित्य में विशेष दिलचस्पी पैदा हुई।

साहित्य में जब भी कोई शुरूआत करता है, तो देखता है कि इस समय कैसा लिखा जा रहा है। विचारधारा से प्रेरित कविताएँ सामने थीं, प्रभावित करती थीं, इनमें से अपने लिए रास्ता बनना था। शायद जीवन के प्रारंभ में ही उस युवा कवि ने यह जान लिया था कि जीवन बहु आयामी है। यदि साहित्य जीवन की व्याख्या और अनुभूतियों का प्रगटीकरण है, तो वह एक पक्षीय कैसे हो सकता है? – इस प्रश्न के साथ ही हम अशोक वाजपेयी के सर्जक मन का विकास देखते हैं।

सोलह साल का युवा, फिल्म संगीत का दीवाना क्यों न हो। उस समय के सभी प्रसिद्ध फिल्म संगीत के गायकों को उसने सुना और प्रभावित भी हुआ, फिर एक दिन अपने मित्र देवदत्त दुबे के साथ सायं घूमते हुए म्यूनिस्पल स्कूल के हॉल में एक शास्त्रीय संगीत की सभा में जाने का मन हुआ, कौतुहलवश कि चलो, देखते हैं, यहाँ क्या हो रहा है? वहाँ चमत्कार हो रहा था, पंडित कृष्णराव शंकर का गायन। श्रोता बहुत कम, परंतु सब मंत्रमुग्ध खोए हुए अपने आप में। पहली बार ऐसा गाना सुना दोनों मित्रों ने। लगभग दो घंटे वह गायन कार्यक्रम चला। दोनों मित्र आश्चर्यचकित सुनते रहे। पहली बार पता चला अरे, गाना तो ये है। फिर ढूंढ–ढूंढ कर शास्त्रीय गायन के रिकॉर्ड सुने गए। शास्त्रीय संगीत में वादव्य यंत्रों को सुना गया। बिना संगीत का व्याकरण जाने। संगीत की विधिवत् शिक्षा के बिना। सिर्फ सुन–सुनकर उन्हें अच्छे संगीत की पहचान हुई। शास्त्रीय संगीत ने ही उन्हें अमूर्तन के आनंद से परिचित कराया। यह समझने में उन्हें देर न लगी कि सभी कलाएँ अमूर्तन में पहुँचकर ही अद्वितीय हैं। काव्य, संगीत और चित्रकला की श्रेष्ठता वहीं है।

सैयद हैदर रजा और जे. स्वामीनाथन की पेंटिंग की ओर अशोक वाजपेयी आकर्षित होते हैं। रजा के चित्रों में वृत और विन्दु उन्हें लुभाते हैं। इनमें ब्रह्मांड विज्ञान के साथ भारतीय दर्शन की चिह्न हमें किसी और लोक में ले जाते हैं। कवि और कलाकार स्वामीनाथन के चित्रों में भारतीय दर्शन में प्रतिष्ठित चिह्नों, ओम, स्वास्तिक, कमल, सर्प आदि का रूपाकार और उनका काल्पनिक ज्यामितीय चित्रण एक खास तरह का प्रभाव पैदा करता है। अशोक वाजपेयी ने उसे आत्मसात किया और उससे प्रभावित हुए। इस प्रकार उनका सर्जक मन काव्य, संगीत और कला के क्षेत्र में रमता चला गया।

संगीत और कला में वे सर्जक न होकर उसकी उत्कृष्टता के प्रबल समर्थक हैं। साहित्य में काव्य और आलोचना उनकी सर्जना के आयाम हैं। काव्य को उन्होंने परंपरा से जानने की कोशिश की। बिना किसी के कहे उन्होंने अपनी मर्जी से नवमी कक्षा में हिंदी के वजाय संस्कृत पढ़ने का निर्णय लिया। और स्नातक कक्षाओं में भी उन्होंने अंग्रेजी एवं इतिहास विषयों के साथ संस्कृत का अध्ययन किया। वह इसलिए कि मुझे अपनी काव्य–परंपरा को जानना है। इस प्रकार अशोक वाजपेयी हिंदी काव्य में संस्कृत की परंपरा से आए। वे शुरू से ही यह कहते आए हैं कि जीवन बहुआयामी है, इसकी व्याख्या किसी फ्रेम में रहकर नहीं की जा सकती, परंतु वे स्थापित फ्रेम का विरोध भी नहीं करते, उसका अतिक्रमण जरूर करते हैं। एक ओर वे अजेय से प्रभावित हैं दूसरी ओर रघुवीर सहाय, शमशेर और मुक्तिबोध के प्रभाव को भी वे मुक्त भाव से स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार अशोक वाजपेयी का काव्य संसार खासा विस्तृत और व्यापक है। 'शहर अब भी संभावना' से उनकी काव्य–यात्रा शुरू होती है। जैसा मैं वे पहले ही कहा कि जब वे शुरू कर रहे थे, तब साहित्य में एक खास किस्म के लेखन का आग्रह था। वे भी वैसा लिखते हुए मुख्यधारा में आ सकते थे, परंतु उन्होंने धारा से बाहर जो छूट रहा था, उसे समाहित करते हुए अपना रास्ता चुना। वे अपने काव्य में प्रेम की बात करते हैं। कभी जीवन में प्रेम अशेष हो सकता है? वे परिवार की बात करते हैं। उन्होंने दिदिया 'माँ' पर कविताएँ लिखी अपनी आसन्न प्रसवा माँ पर उनकी प्रसिद्ध कविता है। ऐसी कविता हिंदी में भला किस कवि ने लिखी है? उनकी कविता में पुरखे हैं। वे कहते हैं, हम अपने पूर्वजों की अस्थियों में रहते हैं। अशोक वाजपेयी की कविता जीवन के विराट् फलक को देखती है। इसमें प्रकृति है, अपने पूरे कौतूहल के साथ। दरअसल उनकी कविता हर आश्चर्य को कहने की कोशिश है। प्रकृति के पास वे जिज्ञासा लिए उपस्थित हैं। जानना चाहते हैं, उसके रहस्य को। रहस्य कहाँ नहीं है? वे रहस्यों के सामने उसे जानने के लिए खड़े हैं, इसी कोशिश में उनकी कविता जन्म लेती है। शब्द ही वह साधना है, जो निःशब्द की यात्रा में आपका सहारा है। वह आपको खो जाने से बचाए रखता है। बार–बार अशोक वाजपेयी अपनी कविता में शब्द की महिमा को गाते हैं। वे कहते हैं गहरे नाउम्मीद अंधेरे में चीखो, विलापों और पुकारों के घमासान में उठता है एक लहूलुहान, लेकिन हार न माननेवाला शब्द।

शब्द अपराजेय है। वे अपनी भाषा, शब्द संपदा, भाषा व्यवहार, शब्द नियोजन को लेकर चिंतित हैं, तभी तो कहते हैं– भाषा में शब्द लगातार घट रहे हैं और गालियाँ तेजी से बढ़ रही हैं। अखबार निकल रहे हैं, स्तुति स्मारिकाओं की तरह निर्लज्ज।

अशोक वाजपेयी अपने शब्दों में प्रार्थनाएँ रचते हैं, ये रहस्य को जानने के लिए याचनाएँ हैं। उनकी कविता में जहाँ मनुष्य केंद्र में है, वहीं उसके चारों और विविध रूपों में ब्रह्मांड है। यहाँ जीवन एकाकी नहीं, उसका विस्तार है। प्रेम प्रकृति, परिवार, संबंध, समाज और समाज विरोधी ताकतों की भी वे अपनी कविता में पड़ताल करते हैं। सत्रह कविता संग्रहों में उनका कवि कर्म हमारे सामने है, पर अब भी उम्मीद है, ''हो सके तो मैं अपने समय के लिए उम्मीद की एक नई वर्णमाला लिखना चाहता

हूँ।''

जहाँ उन्होंने जीवन में संघर्ष की पक्षधरता दिखाई है, वहीं सौंदर्य और आनंद की गाथा भी है। वे अली अकबर खाँ, कुमार गंधर्व और जे.स्वामीनाथन पर कविता लिखते हैं। वे अपनी कविता में कला और संगीत की बातें करते हैं। इस प्रकार उनका काव्य फलक बहुत विस्तृत है। उनका लेखन कभी एक पक्षीय नहीं रहा। वे बहुवचन में बात करते हैं, उनकी कविता जीवन के विविध पक्षों की व्याख्या तो करती ही है, साथ ही कला के विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से आवाजाही करती है। जिस समय एक खास फ्रेम की काव्यधारा का वर्चस्व हो, उस समय फ्रेम के बाहर लिखनेवाले अशोक वाजपेयी का रूपवादी, कलावादी कहकर जबरदस्त विरोध किया गया। यह सोची–समझी रणनीति थी। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में सबसे पहले सोवियत रूस में स्टालिन ने रूपवादी कहकर, पार्टी लाइन से बाहर लिखनेवाले लेखकों की निंदा की थी। यही शैली यहाँ भी अपनाई गई। स्टालिन ने तो रूपवादी कहकर महान् संगीतकार इगोर स्ट्राविंस्की की भी आलोचना की थी। बाद में कई नोबेल पुरस्कार प्राप्त साहित्यकारों और दुनिया के कई प्रसिद्ध कलाकारों ने उनके वक्तव्य की निंदा की, तब उन्होंने अपना वक्तव्य वापस ले लिया था।

हमारे यहाँ लीक से बाहर चलनेवालों को इस तर्ज पर रूपवादी, कलावादी कहा गया। इस संकुचित विचार के कारण हमारे महान् संगीतज्ञों, नृत्यकारों और चित्रकारों को उस खेमे में पर्याप्त स्वीकृति नहीं मिली। बाद में उन महान् कलाकारों का विश्वव्यापी सम्मान देखते हुए उन्हें स्वीकार करना पड़ा, परंतु वे कलाकार अपनी परंपरा के साथ अडिग खड़े रहे। अशोक वाजपेयी ने इतना विपुल और इतना विविध लिखा कि काव्य जगत् में तमाम विरोधों के बावजूद उनकी उपस्थिति अक्षुण्ण है।

काव्य आलोचना के क्षेत्र में अशोक बाजपेयी नए आयाम लेकर आए। आलोचना में उनकी दर्जन भर किताबें उन्हें एक बड़े आलोचक के रूप में स्थापित करती हैं। वह प्रगतिशील आलोचना के शिखर का समय था और डॉ नामवर सिंह आलोचना के सिरमौर थे। उनकी स्थापनाओं से हटकर कुछ कहना एक मुश्किल काम था, ऐसे में अशोक वाजपेयी काव्य आलोचना में नई अवधारणाएँ लेकर आए। अशोक वाजपेयी नामवर सिंह को पसंद करते हैं, उन्हें बड़ा आलोचक मानते हैं, परंतु वे उन्हें आलोचना की सीमा नहीं मानते। वे बार–बार कहते हैं कि जिंदगी उस फ्रेम पर समाप्त नहीं हो जाती जिसे प्रगतिशील आलोचना ने बना दिया है। जिंदगी उससे बाहर भी है और यदि साहित्य जिंदगी की व्याख्या है तो उसकी आलोचना किसी निर्धारित फ्रेम में कैसे सीमित हो सकती है?

एक और वे मुक्तिबोध पर बात करते दूसरी ओर वे अज्ञेय के महत्त्व को भी निरूपित करते हैं। अशोक वाजपेयी अपनी आलोचना में सिर्फ यथार्थवाद का एजेंडा लेकर नहीं चलते, वे अपनी आलोचना में प्रेम प्रकृति और परंपरा की व्याख्या करते हैं। उनकी काव्य आलोचना मनुष्य की चेतना के अँधेरे कोनों तक जाती है, जहाँ कवि शब्दातीत की ओर इशारा करने लगता है, उनका आलोचक मन उसे उपेक्षित नहीं करता, वरन् उसे समझने की कोशिश करता है। जीवन बहुत विस्तृत है, साहित्य में उसके विविध आयामों की व्याख्या की जाती है। सिर्फ सामाजिक यथार्थ की कसौटी पर हम जीवन के अन्य पक्षों की उपेक्षा नहीं कर सकते। अशोक वाजपेयी एक जगह कहते हैं–

''आलोचना सिर्फ रचना की नहीं, उसके माध्यम से मनुष्य का ही साक्षात्कार है और अगर रचना सामाजिक यथार्थ को अपना उपजीव्य बताती है तो उसकी प्रामाणिकता, विश्वसनीयता और वस्तुपरकता की जाँच किए बिना यह साक्षात्कार सार्थक, बल्कि पूरा भी नहीं हो सकता। हमारी समूची संस्कृति के स्वास्थ्य के लिए यह अनिवार्य है कि आलोचना रचना में सामाजिक यथार्थ को लेकर व्याप्त सरलीकरणों, रूमानियत और राजनैतिक भोलेपन और नैतिक संवेदनहीनता के विरुद्ध लगातार संघर्ष करे, ताकि साहित्य में व्यक्त अनुभव, आकलन और समझ को राजनीति, विज्ञान, पत्रकारिता, अर्थशास्त्र जैसे अनुशासन के मुकाबले अवयस्क या अविश्वसनीय न माना जाए जैसा कि इन दिनों अक्सर माना जा रहा है।''

सन् 1970 में अशोक वाजपेयी की पहली आलोचना पुस्तक आई 'फिलहाल' प्रगतिशील आलोचना के वर्चस्व काल में यह पुस्तक नई बहस की शुरूआत करती है। सामाजिक यथार्थ, समकाल, प्रतिबद्धता, भोगा हुआ सच, तत्कालिक राजनीति और मानवीय संघर्ष जैसे विषयों पर अशोक वाजपेयी अपने ही अंदाज में बात करते हैं। वे मनुष्य के विकास क्रम को झुठलाते नहीं, परंतु उसको विकास की अपार संभावनाओं पर संवाद करते चलते हैं। वे साहित्य में सिर्फ सामाजिक यथार्थ की वकालत नहीं करते, इस आधार पर हम सिर्फ एक पक्ष देख पाते हैं, जबकि साहित्य का संसार बहुत विस्तृत है। उनका आग्रह है कि साहित्य के अन्य अनुशासनों पर भी बात की जानी चाहिए। वे समकालीनता को भलीभाँति समझते हैं, परंतु उसके घेरे में रहना पसंद नहीं करते इसलिए अपनी आलोचना में वे नया काव्य शास्त्र गढ़ते हैं। उनकी काव्यालोचना में जो ताजगी है और खुलापन है, वह पाठकों को आकर्षित करता है। उन्होंने अपने आलोचनात्मक लेखन द्वारा पूर्ववर्ती सीमाओं का अतिक्रमण किया है और नई स्थापनाओं के साथ वे आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं।

'फिलहाल' के पश्चात् 'कुछ पूर्वग्रह', 'कविता का गल्प', 'तीसरा साक्ष्य', 'समय के सामने', 'कुछ खोजते हुए', 'पावभर जीरे में ब्रह्मा भोज', 'सीढ़ियों शुरू हो गई', 'कविता के तीन दरवाजे' आदि उनकी कई आलोचना पुस्तकें हमें लगातार दिखाई देती हैं, जो उन्हें इस समय का बड़ा आलोचक सिद्ध करती हैं। अपनी अवधारणाओं के साथ वे सदा बातचीत के लिए उत्साहित रहते हैं। हालाँकि विचारधारा वालों ने हमेशा उन पर कलावादी, रूपवादी और विचारहीन होने का आरोप लगाया है। दरअसल उनकी आलोचना और उनका व्यक्तित्व विचारधारा के फ्रेम को बार–बार तोड़ता है। वे हमेशा कहते हैं कि जिंदगी उस निर्धारित दायरे से बहुत बड़ी है और जिंदगी की व्याख्या करनेवाला साहित्य भी बड़ा है। जीवन में विविध कलाओं और उनके प्रभाव को भला कैसे उपेक्षित किया जा सकता है? इसी प्रकार उन्हें विचार से नहीं विचार–प्रणाली से परहेज है। वे स्पष्ट कहते हैं कि आलोचना का काम प्रश्न उठाना है, फतवे देना नहीं। जबकि उनके समानांतर कई आलोचक अपनी आलोचना में फतवे जारी करते हैं। बरअक्स अशोक वाजपेयी उनके सामने प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं और उन्हें बहस करने के लिए खुला निमंत्रण देते हुए दिखाई देते हैं। वे अपनी आलोचना में वैचारिक भिन्नता पर नहीं काव्य वैशिष्ट्य पर ध्यान केंद्रित करते हैं। अज्ञेय, शमशेर और मुक्तिबोध को वे नई कविता की बृहत् त्रयी मानते हैं। यहाँ शमशेर और मुक्तिबोध के साथ अजेय की बात करना यह बताता है कि उनकी सोच कितनी व्यापक है। वे मार्क्सवादी आलोचना और साहित्य में वामपंथी राजनीति के वर्चस्व को अस्वीकार करते हैं। उनके राजनैतिक विश्वास गांधी के निकट हैं। वे मानते हैं कि साहित्य का अपना स्वराज है और अमूर्तन का अध्यात्म। वे स्पष्ट करते हैं कि साहित्य एक मशाल है, तो उसे राजनीति के आगे होना चाहिए, तभी वह राजनीति को रास्ता दिखा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अशोक वाजपेयी अपने किस्म के अनूठे कवि हैं और आलोचना के नए आयाम लेकर ऐसे समय साहित्य जगत्

में पदार्पण करते हैं, जब विचारधारा, संगठन और एक खास तरह की राजनीति का वर्चस्व था। कमोवेश आज भी है, तब अशोक वाजपेयी धारा के विरुद्ध अपने आपको स्थापित करते हैं और साहित्य में जिंदगी के विविध पक्षों की खुलकर वकालत करतें है, जिसके लिए उन्हें तरह–तरह के विरोध झेलने पड़ते हैं, परंतु वे जो सोचते है, वैसा ही लिखते है, वहाँ कोई विचार–प्रणाली या राजनीति उनके मूल्य निर्धारित नहीं करती। वे साहित्य की सध्वायत्ता के पक्षधर हैं और एक सर्जक के रूप में उसके उदाहरण भी।

कवि और आलोचक के अलावा अशोक वाजपेयी का एक रूप और है, कला समीक्षक का। अमूमन हिंदी में कवियों और लेखकों की कलाओं में रुचि बहुत कम देखने को मिलती है। ऐसे उदाहरण विरले हैं कि निराला संगीत में गहरी रुचि रखते हैं और महादेवी वर्मा चित्रकारी में। इधर बृहद् हिंदी समाज में उंगलियों पर गिने जानेवाले लोग होंगे, जो संगीत, नृत्य और चित्रकला में साधिकार दखल रखते हों। अशोक वाजपेयी उनमें से एक हैं। मेरी जानकारी में कलाओं पर जितना विस्तृत और गहन विश्लेषण अशोक वाजपेयी हिंदी में लेकर आए, उतना कोई और लेखक, कवि नहीं। हाँ, कला समीक्षक हमारे यहाँ कई हैं, परंतु किसी ने कलाओं पर अपने लेखन को साहित्य जगत् में इस तरह प्रतिष्ठित नहीं किया, जिस प्रकार अशोक वाजपेयी ने किया।

अशोक वाजपेयी की एक प्रसिद्ध किताब है 'समय से बाहर' इसमें संगीत, नृत्य और चित्रकला पर उनके कई लेख संगृहीत हैं। इस किताब को मैं इसीलिए महत्त्वपूर्ण कहता हूँ कि इसमें उन्होंने साहित्य और कलाओं के संसार को समय के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया है। अपनी भूमिका में ही वे लिखते हैं–

''समय का आग्रह इधर पिछले लगभग सौ वर्षों से साहित्य में लगभग केंद्रीय होता गया है, अपने समय से संबंध या उसके प्रति वफादारी प्राचीनों के यहाँ विशेष महत्त्व नहीं रखता था, हालाँकि देश–काल का विचार था, पर इन दिनों तो समय का आतंक समूचे साहित्य पर है। जो अपने समय को नहीं लिख रहा है, वह मूल्यवान कुछ नहीं कर रहा, ऐसा पूर्वग्रह प्रबल है। समय को समाज का लगभग समानार्थी भी माना जाता है, अगर आपके यहाँ समाज की कुछ पहचानी जा सकने वाली छवियाँ हैं, तो आप समय के हिसाब से काम कर रहे होंगे। सारा समय सिर्फ सामाजिक समय है। यह और बात है कि अक्सर समाज की उपस्थिति समाज शब्द की ही उपस्थिति है। उस सत्ता या जटिल संरचना की नहीं जो कि समाज बुनियादी और अनिवार्य रूप से होता है। सूत्र कुछ यों बन गया है कि समय समाज है।

इस चालू धारणा के रहते कलाओं का औचित्य उसी हद तक है, जब तक कि वे इस सामाजिक पूर्वग्रह की पुष्टि या सत्यापन करें। कलाओं के सामाजिक आशय और स्रोत होते हैं इससे इंकार नहीं। पर वे उन्हीं तक महदूद नहीं हैं और न ही वे उन्हीं से प्रेरित रचे या समझे जा सकते हैं, साहित्य और कलाएँ ऐतिहासिक–सामाजिक समय के बरक्स अपना समय रचती है।

समय का अर्थ मात्र काल नहीं है वह रूढ़ि, प्रथा और परिपाटी भी है और सीमा या हद भी। कवि या साहित्य का आलोचक कलाओं से उलझे, ऐसी प्रथा हिंदी में नहीं है। अक्सर साहित्य ही उसकी हदबंदी है। यहाँ इस कवि–समय से, आलोचनात्मक रुढ़ि से बाहर जाने का उद्‌गम है। इसीलिए समय से बाहर।''

आगे अशोक वाजपेयी कहते हैं कि हम कब उस खुले चौगान में मुक्त होकर साँस लेंगे, जब भीमसेन जोशी के बगल में बतियाते बैठे होंगे शमशेर, स्वामीनाथन के चित्रों को निहार रहे होंगे नसीर, अमीनुद्दीन खाँ डागर, अरुण कोलटकर की कविताएँ सुन रही होंगी गंगूबाई हंगल, हबीब तनवीर का नाटक देखते होंगे अकबर पदमसी और बिरजू महाराज आस्वाद में डूबे, एक दूसरे से बेखबर, पर एक दूसरे के प्रति बेहद सजग और चौकन्ने।

स्वयं अशोक वाजपेयी ने आगे बढ़कर ऐसा वातावरण बनाया है, जिसमें संगीतकार, नृत्यकार, चित्रकार और साहित्यकार एक साथ हैं और एक दूसरे की सर्जना पर टिप्पणियाँ कर रहे हैं। उनकी कुमार गंधर्व, अमीर खाँ, सैयद हैदर रजा और जे. स्वामीनाथन की मित्रताएँ जगजाहिर हैं। उन्होंने संगीत विषयक पहला निबंध–'अली अकबर खाँ का सरोद वादन' लिखा, इसके पश्चात् कला केंद्रित लेखन में वे नये प्रयोग करते चले गए। कुमार गंधर्व और मल्लिकार्जुन मंसूर पर उन्होंने लंबी कविताएँ लिखीं। संगीत, नृत्य और चित्रकला पर उनका विपुल लेखन है, जो साहित्य की धरोहर है।

इस प्रकार आजादी के बाद अशोक वाजपेयी ने पहली बार साहित्य को विचार प्रणाली से अलग करते हुए, उसे एक खास किस्म की राजनीतिक जकड़बंदी से मुक्त कर उसके स्वायत्त रूप को विभिन्न कलाओं के समकक्ष लाकर समय विर्वचन प्रस्तुत किया। साहित्य में एवं समानांतर कलाओं में समकालीनता के प्रश्न को अशोक वाजपेयी अपने ढंग से विश्लेषित करते हैं वे लिखते हैं–

''विभिन्न माध्यमों के बीच अंतर तो है ही। उनके प्रयोक्ताओं के बीच कुछ न कुछ दूरी भी रहती ही है। पर लगता है कि हमारे परिवेश में विभिन्न कलाओं के बीच संवाद और अंतर क्रिया बहुत ही कम है। संगीत और नृत्य की महफिलों में कभी– कभार लेखक और चित्रकार मिल जाएँगे, पर कविता–पाठ सुनने कोई संगीतकार आ जाए या कला–प्रदर्शनी देखने कोई नर्तक, ऐसा बहुत कम होता है। अगर आ जाए तो किसी माध्यम के प्रति स्वाभाविक उत्सुकतावश नहीं, किसी व्यक्तिगत संबंध के कारण। एक कारण तो किसी हद तक यह है कि समकालीनता का सीधा दबाव जैसा साहित्य, रुपंकर कलाओं और रंगमंच पर है, संगीत और नृत्य पर नहीं। इसीलिए शायद समान सरोकारों की कोई बिरादरी नहीं बनती। हमारे यहाँ शायद ही कोई आंदोलन ऐसा हुआ है, जो कि एक से अधिक कलाओं में एक साथ व्याप्त हुआ हो जबकि यूरोप में मसलन प्रभाववाद रूपंकर कला, साहित्य, संगीत आदि का संयुक्त आंदोलन था। यह कहना सही नहीं होगा कि शास्त्रीय संगीत या नृत्य की जड़ शास्त्रीयता आड़े आती होगी। अव्वल तो यह शास्त्रीयता जड़ नहीं बहुत जीवंत और गतिशील है।''

इधर साहित्य, रंगमंच और सिनेमा पर पर्याप्त आलोचनात्मक लेखन हुआ। विश्लेषण की नई पद्धतियां सामने आयीं। दुर्भाग्य से शास्त्रीय कलाओं में आलोचनात्मक लेखन बहुत कम हुआ। हाँ, अंग्रेजी में इस तरह का काम देखने में आया है। हमारे कई शास्त्रीय कलाकारों पर अंग्रेजी में महत्त्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध हैं। हिंदी में बहुत कम, परंतु शास्त्रीय कलाओं में एक तरह की जो स्थानीयता है, लोक–परंपरा है, आध्यात्मिक रुझान है, वह भारतीय भाषाओं यथा बंगला, मराठी आदि की समीक्षाओं में तो उभरकर आता है, लेकिन अंग्रेजी समीक्षा में यह छूट–छूट जाता है। हिंदी में जो समीक्षा लेख देखने को मिले, उनमें विश्लेषण कम, विवरण ज्यादा दिखाई देता है। शायद पहली बार हिंदी में शास्त्रीय कलाओं पर गंभीर आलोचनात्मक लेखन हमें अशोक वाजपेयी के यहाँ दिखाई देता है।

शास्त्रीय कलाओं की आलोचना में अशोक वाजपेयी सबसे पहले इन कलाओं की स्वायत्तता की बात करते हैं। इसके पहले शास्त्रीय कलाओं को सिर्फ राष्ट्रीय पहचान के रूप में देखा जाता था। उनमें शास्त्र परंपरा के निर्वाह की बात प्रमुख थी और इन कलाओं में व्यक्त ऐंद्रियता को धार्मिक

व्याख्याओं से समझाया जाता था। अशोक वाजपेयी अपने विवरणों में इन कलाओं से सीधे साक्षात्कार करते हैं और उनमें गतिशील परंपरा के साथ नित नूतनता की तलाश करते हैं। वे इन कलाओं की स्वतंत्र पहचान के साथ इनमें नवाचार की बातें करते हैं। इस प्रकार अशोक वाजपेयी अपनी कला आलोचना से हमें शास्त्रीय कलाओं की गतिशील और जीवंत परंपरा के पास लेकर जाते हैं। खासकर हिंदी में ऐसा विश्लेषणात्मक कला लेखन हमें अन्यत्र दिखाई नहीं देता। उन्होंने दिग्गज कलाकारों पर संस्मरण लिखे, कविताएँ लिखीं और उनकी कला वैशिष्ट्य पर लंबे समीक्षात्मक निबंध लिखें। एक जगह अशोक वाजपेयी लिखते हैं–

''साहित्यकारों में संवेदना का जितना विस्तार होता है, अन्य शिल्पियों में नहीं होता, साहित्यकार ही हैं जो दूसरे शिल्पों के भी सदस्य होते हैं। पर साहित्यकार भी संगीत पर लिखने से कतराते ही हैं। लिखने का अधिकार सहृदय को ही होता है और उसका संबंध जितना रस से है, उतना शास्त्र से नहीं।''

अशोक वाजपेयी सालों–साल जनसत्ता में अपना कॉलम कभी–कभार लिखते रहे। अब यह लेखन पुस्तकाकार रूप में भी प्रकाशित है। इस कॉलम में उन्होंने साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला, रंगमंच, पुस्तकें और देश–भर में होनेवाले कला उत्सवों पर गंभीर लेखन किया है। विश्व–साहित्य एवं कला क्षेत्रों की हलचलों पर उनकी गहरी नजर है। समय–समय पर उन्होंने इन पर सारगर्भित टिप्पणियाँ अपने कॉलम में की है, जो साहित्य जगत् की धरोहर हैं।

अशोक वाजपेयी के व्यक्तित्व का एक सबल पक्ष और है, म.प्र. शासन में उनका सांस्कृतिक सचिव होना। अफसर तो शासन में बहुत होते हैं और वे अपनी भूमिका निभाकर विदा हो जाते हैं, परन्तु अशोक वाजपेयी शासन में बड़े अफसर होकर अपनी शर्तों पर कला और संस्कृति के लिए काम करते रहे। भारत भवन की स्थापना और फिर पूरे देश में भोपाल को सांस्कृतिक राजधानी के रूप में पहचान दिलाना, अशोक वाजपेयी के ही बस की बात थी। प्रशासन में रहकर अशोक वाजपेयी ने साहित्यकारों, संगीतज्ञों, रंगकर्मियों और कला–सेवियों को राजनेताओं से ज्यादा महत्त्व और सम्मान प्रदान किया, जिसके कि वे सदा से हकदार रहे। उनके कार्यकाल में भोपाल में 'निराला सृजनपीठ', सागर में 'मुक्तिबोध सृजनपीठ' और उज्जैन में 'प्रेमचंद्र सृजनपीठ' की स्थापना हुई, जिससे उस समय के महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों को आदरपूर्वक आमंत्रित किया गया, जहाँ रहते हुए उन्होंने कई उल्लेखनीय कृतियों का सृजन किया। खजुराहो नृत्य समारोह, तानसेन संगीत समारोह, अमिर खाँ उत्सव, कालिदास समारोह जैसे महत्त्वपूर्ण आयोजनों के कारण मध्यप्रदेश की पूरे देश में पहचान स्थापित हुई। साहित्य परिषद् द्वारा समय–समय पर महत्त्वपूर्ण साहित्य के कार्यक्रम आयोजित हुए, जिनमें देश–भर से मूर्धन्य साहित्यकार बुलाए गए। इन आयोजनों में सम्मिलित होने वाले साहित्यकारों और कलाकारों के सम्मान का पूरा ख्याल रखा गया, उन्हें उचित पारिश्रमिक प्रदान करने से लेकर उनकी सुविधाओं का समुचित प्रबंध अशोक वाजपेयी की निगरानी में हमेशा उच्च स्तरीय रहा।

अशोक वाजपेयी की बढ़ती हुई लोकप्रियता और उनकी कार्य–प्रणाली को देखते हुए उन पर हमले भी हुए। भारत भवन के बहिष्कार की बातें सामने आयीं, परंतु उनके द्वारा स्थापित मानदंडों को कोई चुनौती नहीं दे सका। वे स्वयं सर्जक तो हैं ही, उनके दर्जनों काव्य संग्रह और दर्जनों आलोचना ग्रंथ, इस बात के प्रमाण हैं। सबसे बड़ी बात है कि वे कहीं भी हो रही सर्जना के प्रबल पक्षधर हैं, उनकी यह पक्षधरता हर गुट, खेमे, राजनीति और निजी स्वार्थ से बहुत ऊपर है। उन दिनों तार सप्तक में आ जाना किसी को स्थापित हो जाना के लिए पर्याप्त था। अशोक वाजपेयी ने इसी तर्ज पर 'पहचान सीरिज' का प्रकाशन किया, जिसमें छप जाना, तार सप्तक की तरह ही महत्त्वपूर्ण माना गया। इसके अंतर्गत आज के कई मूर्धन्य कवियों के पहले काव्य संग्रह प्रकाशित हुए।

अशोक वाजपेयी ने कई प्रसिद्ध पत्रिकाओं का संपादन किया, जिनमें पूर्वग्रह, बहुवच, समास, अरूप एवं स्वरमुद्रा आदि। सुदूर गाँव और कस्बों में बैठे हुए किसी लेखक, कवि की कोई रचना उन्होंने कहीं पढ़ी और उन्हें वह अच्छी लगी, तो उन्होंने झट लेखक–कवि से संपर्क किया और उसकी रचनाओं को अपनी पत्रिकाओं में स्थान दिया। वे संगीत, नृत्य, रंगमंच और चित्रकला के क्षेत्र में भी कहाँ क्या हो रहा है, इससे प्रयासपूर्वक भलीभाँति परिचित होते रहे और सार्थक सृजन को उन्होंने बिना किसी गुटबंदी के भरपूर सम्मान दिया।

मैंने उनकी लिखी हुई अधिकांश किताबें पूरे मनोयोग से पढ़ी हैं, उनके काव्य ग्रंथ और आलोचना की पुस्तकें बहुपठित हैं। इधर मैं उनकी दो किताबों का विशेष उल्लेख करना चाहूँगा। उनकी एक संस्मरण की पुस्तक है–'अगले वक्तों के ये लोग' और दूसरी पुस्तक है–'अपने दूसरे' (पत्र संकलन) अशोक वाजपेयी को जानने–समझने के लिए मैं ये दो पुस्तकें पढ़ा जाना जरूरी समझता हूँ। पहली पुस्तक में अशोक वाजपेयी अपने समकालीन साहित्यकारों, संगीतज्ञों, रंग–कर्मियों और अन्य सहयोगियों के विषय में क्या सोचते हैं, यह विस्तार से वर्णित है। अज्ञेय, शमशेर, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, नेमीचंद्र जैन, इंतजार हुसैन, हरिशंकर परसाई, कृष्णा सोबती, कृष्ण बलदेव वैद, बदरी विशाल पिती, श्रीकांत वर्मा, निर्मल वर्मा, कुमार गंधर्व, मल्लिकार्जुन, मंसूर, जगदीश स्वामीनाथन, सैयद हैदर रजा और ब.ब. कारंत जैसे आत्मीय जनों को अशोक वाजपेयी ने खूब याद किया है। निश्चित है अशोक वाजपेयी से इनके अंतरंग संबंध रहे हैं। इन प्रतिभाओं के व्यक्तित्व और कृतित्व को भिन्नता के दायरे में अशोक वाजपेयी किस तरह देखते हैं, इसका विस्तृत ब्यौरा इस किताब में मिलता है। इस किताब को पढ़ना अशोक वाजपेयी के अंतर्जगत् में साहित्य कला और संगीत के उद्वेगों को जानना समझना है। वे अपने समय
में कला जगत् के दिग्गजों के मनोमय संसार और उनकी कला के सूक्ष्म आवेगों को किस तरह आत्मसात करते हैं, इसका विस्तृत विवरण पढ़ते हुए अशोक वाजपेयी के अंतरंग पक्ष को जाना जा सकता है।

दूसरी किताब 'अपने–दूसरे' से कला और साहित्य जगत् के मूर्धन्य अशोक वाजपेयी के विषय में क्या सोचते हैं, उनसे उनके कितने आत्मीय अतरंग संबंध संपर्क रहे हैं, इससे भलीभाँति परिचित हुआ जा सकता है। 200 पत्रों के इस संकलन में अशोक वाजपेयी के व्यक्तित्व के कई आयाम खुलते हैं।

यह बात तो तय है कि अपने समय में साहित्य और कला समीक्षक के रूप में अशोक वाजपेयी की एक बड़ी उपस्थिति हैं। उनसे असहमत हुआ जा सकता है और बहुत लोग हैं भी, परंतु उनकी उपस्थिति को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। मैं जिस तरह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को देखता हूँ, उसमें मुझे वे बड़े सर्जक और सर्जना के प्रबल पक्षधर दिखाई देते हैं।

अंत में उनकी ही एक कविता याद करते हुए 'प्रार्थना एक वृक्ष है, जिसकी हर पत्ती गुनगुनाती है, पर अपने लिए कुछ नहीं माँगती।'

आलेख

'रामचरितमानस' में दूत एवं गुप्तचर प्रणाली

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्.
चंडीगढ़, मो. 9876301085

'रामचरितमानस' में कूटनीति, दूत एवं गुप्तचर–प्रणाली की विवेचना से पहले इससे संबद्ध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना समीचीन होगा। यह प्रमाण सिद्ध यथार्थ है कि मानवीय सभ्यता और राजतंत्र के क्रमिक विकास के साथ कूटनीति का भी पूरा तंत्र धीरे–धीरे उभरा है। कालान्तर में कूटनीति के समस्त छल–प्रपंच, उसके सभी साहसिक कृत्य, सभी स्तुत्य और निन्दनीय आयाम 'गुप्तचर' के रूप में स्वीकृत और प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार राजनीति, कूटनीति तथा गुप्तचरी एक ही राजतंत्र के तीन आयाम दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय प्राचीन वाङ्मय का इतिहास साक्षी है कि ऋग्वेद में 'वरुण' के दूतों का उल्लेख मिलता है। राम के दूत अंगद तथा हनुमान भी आदिकाव्य में उल्लिखित हैं। कृष्ण का स्वयं दूत बनकर दुर्योधन के सामने संधि प्रस्ताव रखना भी महाभारत की अत्यंत परिचित घटना है। कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में राजनीति, कूटनीति तथा गुप्तचरी संबंधी प्राचीनतम शास्त्रीय तथा सर्वांगीण विवरण प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि कौटिल्य ही इस शास्त्र के आदि व्याख्याता हैं, क्योंकि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कई आचार्यों को सादर स्मरण किया है।

यह स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिए कि 'मुद्राराक्षस' एकमात्र ऐसी कृति है जिसमें प्राचीन भारत की गुप्तचरी के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों को बड़े कौशल से एक नाटकीय कथावस्तु में बारीकी से पिरोया गया है। दुर्भाग्य से इस जटिल कूटनीतिक विधा गुप्तचरी को केन्द्र में रखकर लिखी गई अन्य कोई कृति संस्कृत साहित्य में आज उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है गुप्तचरी से संबंधित सभी कार्य–कलाप घृणित और कम–से–कम साहित्य में त्याज्य मान लिये गये। राम, कृष्ण जैसे दिव्य पुरुषों के उदात्त जीवनवृत्त हमारे साहित्यकारों के मन–मस्तिष्क पर इस तरह छा गए कि जीवन के अनुदात्त पक्ष की ओर ध्यान देने की बात सोची ही नहीं जा सकी। नतीजे के तौर पर सत्य तथा अहिंसामूलक सदाचार हमारी 'नीति' का आधार स्तंभ बना और कूटनीतिक षड्यंत्र, जिनमें गुप्तचरी भी सम्मिलित है, भारतीय दृष्टि से केवल निन्द्य मान लिये गये। यह कहना तो कठिन है कि तत्कालीन आदर्शवादिता भौतिक कामनाओं, वीभत्स षड्यंत्रों, रक्त सने संबंधों तथा ऐतिहासिक तनाव के क्षणों में भी यथावत् सुरक्षित रखी जा सकी, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि हमारे पूरे साहित्य को दिशा–निर्देश केवल आदर्शवादिता से ही मिला है।

यह इतिहास की दमकती सूचना है कि इस्लामी काल में कूटनीति शब्द अपनी आदर्शमूलक धारणा को खो चुका था। घृणित स्वार्थों की पूर्ति राजनीति–कूटनीति का एकमात्र उद्देश्य बन चुकी थी। औरंगजेब जैसे धर्मभीरू सुन्नी मुसलमान को कूटनीतिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 'कुरआन–ए–याक' की झूठी कसम खा लेना भी अनुचित न लगता था। पिता शाहजहाँ को कैद में डालना, भाई दाराशिकोह को पाशविक यंत्रणाएँ देकर मरवा डालना भी उस युग की औरंगजेबी कूटनीति के अनुकूल ही था। जाहिर है कि कूटनीति धीरे–धीरे घृणित स्वार्थों, वासनाओं और अनेक लोलुपताओं की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयुक्त होने लगी। गुप्तचरी के सहारे राज्य की आन्तरिक स्थिति पर नजर रखी जाती थी। साथ ही पड़ोसी राज्यों की समस्त गतिविधियों पर भी नियंत्रण रखा जाता था। उल्लेखनीय है कि मुगलकाल की गुप्तचर संस्था का संगठन और गतिविधियों का विवरण 'अखबार–ए–दरबार–ए–मुअल्ला' जैसी हस्तलिखित कृतियों में देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'अखबार नवीसों', 'वाकिया नवीसों' का सीधा संबंध कूटनीतिक व्यवस्था से था।

मुग़लों की भाँति मराठों ने भी अपने गुप्तचर दिल्ली आदि प्रमुख केन्द्रों में नियुक्त कर रखे थे। मराठा शक्ति यह समझ चुकी थी कि 18वीं सदी के भारत का फैसला मुगलों और मराठों के हाथों होना है। नतीजतन, मराठों ने मुगल शासकों की शक्ति पर नजर रखते हुए मुगलों के समानान्तर अपनी गुप्तचर संस्था स्थापित की। उन्हीं की शैली और फारसी भाषा में कूट सूचनाएँ संकलित करने की व्यवस्था की। इस व्यवस्था के कुछ अंश 'पूना अख़बार' नाम से उपलब्ध हैं। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में 'लाहौर दरबार' महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में संगठित हुआ। राजनीति की दृष्टि से यह एक नई शक्ति का उदय था। मराठा शक्ति ने लाहौर दरबार की भौगोलिक सीमाओं में अपने गुप्तचरों का जाल बिछा दिया। इससे मराठा केन्द्रों को पंजाब की गुप्त सूचनाएँ मिलने लगीं। यह देखकर लाहौर दरबार ने भी पहली बार कूटनीतिक धरातल पर अपनी–अपनी स्वतंत्र गुप्तचर संस्था स्थापित करने की योजना बना डाली।

चूँकि महाराजा रणजीत सिंह बहुत महत्त्वाकांक्षी थे और उन्हें अंग्रेजों, मराठों और पंजाब की छोटी–छोटी रियासतों से टक्कर लेनी पड़ी। ऐसी स्थिति में लाहौर दरबार की गुप्तचर संस्था बहुत अधिक काम न कर सकी। लाहौर दरबार कई कारणों से विदेशी गुप्तचरों का गढ़ बन गया। विदेशी कर्मचारी गुप्तचरी का काम करते थे। दुर्भाग्यवश महाराजा रणजीत सिंह इन विदेशी कर्मचारियों के संबंध में कभी ठीक–ठाक निर्णय न ले सके। इसका परिणाम यह हुआ कि लाहौर दरबार इन विदेशी गुप्तचरों के हाथों में खेलने लगा। शत्रुओं को लाहौर दरबार की गुप्त और महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ पहुँचाना इनका काम था। इस प्रकार अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करते हुए ये गुप्तचर भयंकर देशद्रोही की भूमिका भी बड़ी सफलता से निभाते थे। मूलतः ये कूट सूचनाएँ फारसी लिपि में थीं। बाद में इन्हें गुरुमुखी लिपि में खड़ी बोली का रूप प्रदान किया गया। जाहिर है कि लिपि, भाषा तथा अपनी कूटनीतिक सामग्री के कारण इन सूचनाओं का महत्व बहुत अधिक है।

लेकिन यह कहना विषय के केन्द्र के अधिक करीब होना ही है कि प्राचीन भारत में कूटनीतिक प्रणाली का रूप अत्यंत उलझे हुए ढंग में मिलता है। गुप्त समाचार देनेवाले कर्मचारियों को 'चार' के नाम से जाना जाता था। शत्रु राज्य के गुप्त भेदों, महत्त्वपूर्ण समाचारों, सैनिक व्यवस्था तथा सेना संचार आदि को जानने का कार्य गुप्तचरों से ही लिया जाता था। गुप्तचर का काम राज्य में आन्तरिक शांति स्थापना एवं सुरक्षा की व्यवस्था करना भी था। गुप्तचर राजा के नेत्र थे, जिनके बिना वह अंधा माना जाता था। जैसा कि प्रारंभ में ही कहा जा चुका है कि ऋग्वेद में वरुण के चारों (गुप्तचरों का) उल्लेख मिलता है और वरुण की सर्वदर्शिता उसकी 'चार व्यवस्था' का ही प्रमाण है। वे आकाश में उड़ते हुए पक्षी, समुद्र में जलयानों के मार्ग, दूर तक चलनेवाली हवा की गति तथा वर्तमान में हो रही अथवा भविष्य में होनेवाली सभी गुप्त बातों का पता वरुण को होता था। मित्र,

अग्नि, सोम आदि देवताओं और इन्द्र से पराजित राक्षसों के पास भी 'चार' थे। रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों तथा अन्य ग्रंथों, नाटकों, मनुस्मृति और अर्थशास्त्र में भी गुप्तचरों का विश्वसनीय वर्णन मिलता है। वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि रावण ने 'चार संस्था' का विधिवत् संगठन किया था। सीताहरण के बाद उसने आठ गुप्तचरों का दण्डकारण्य में लगा रखा था, ताकि वे राम की गतिविधियों का पता लगाते रहें। इनमें 'शुक' नाम के एक गुप्तचर का उल्लेख मिलता है जिसे रावण ने राम तथा सुग्रीव में फूट डालने के उद्देश्य से भेजा था।3

महाभारत में भी शासन के लिए गुप्तचरों की आवश्यकता पर बल दिया गया है। धृतराष्ट्र के प्रति गुप्तचरों के विषय में कणिक ने कहा है–''भलीभाँति जाँच–परख कर अपने तथा शत्रु के राज्य में गुप्तचर रखें, जो पाखंड वेषधारी तपस्वी हो।''4 द्रोण पर्व 5 में कहा गया है कि दुर्योधन की सेना में कृष्ण के गुप्तचर नियुक्त थे और दुर्योधन ने भी ऐसी ही व्यवस्था कर रखी थी। महाभारत के शांतिपर्व में उन स्थलों के नाम दिये गये हैं जहाँ गुप्तचरों की नियुक्ति की जाती थी। इस बात पर बल दिया जाता था कि गुप्तचर एक–दूसरे को न जान सकें। कौटिल्य ने समाहर्ता (कलेक्टर) द्वारा नियुक्त बहुत से गुप्तचरों की चर्चा की है। ये गुप्तचर अशांति उत्पन्न करनेवालों को दबाने, घूस लेनेवाले न्यायाधिकारियों एवं अन्य विभागों के अधीक्षकों का भेद बताने, अनधिकृत ढंग से धन बनानेवालों का पता लगाने, बलात्कार करनेवालों, चोरों, डाकुओं एवं अपराधियों की खोज करने के लिए तैनात किए जाते थे।6 स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में गुप्तचर व्यवस्था अपने पूरे विस्तार के साथ विद्यमान थी।

यह हकीकत है कि गुप्तचरों की कार्य प्रणाली बताने वाला 'मुद्राराक्षस' से बढ़कर कोई दूसरा ग्रंथ नहीं है। यद्यपि इस नाटक का विषय चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का युद्ध है, तथापि उससे चन्द्रगुप्त के मंत्री चाणक्य और नन्द के दूत तथा मलयकेतु के सामयिक मंत्री राक्षस की कूटनीति का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। राक्षस ने विराधगुप्त को सपेरे के रूप में गुप्तचारिता के लिए पाटलिपुत्र भेजा था। उसकी रिपोर्ट से पता चलता है कि राक्षस का लक्ष्य चन्द्रगुप्त और उसके अनुयायियों में फूट डालना था। इसने भाट स्तनकलस को चन्द्रगुप्त का क्रोध बढ़ाने को भेजा था जो श्लेषपूर्ण छन्दों में गाता था कि चाणक्य तेरी आज्ञा का विरोध करता है और तेरे अधिकार की उपेक्षा करता है, परन्तु चाणक्य की चतुराई राक्षस के प्रयत्नों को विफल बना देती है। इसी प्रकार एक बार उसने अपने विद्वान चिकित्सक अभयदत्त को गुप्तचर रूप में भेजा था और इस गुप्तचर ने चन्द्रगुप्त को पीने के लिए विष दिया था, पर जब चाणक्य ने उसे सोने के पात्र में डाला, तो इसका रंग बदल गया। इस पर चाणक्य ने राजा को उसे न पीने को कहा और उल्टे चिकित्सक को ही पिला दिया, जिससे वह मर गया। कहना न होगा कि प्राचीन भारत में गुप्तचर व्यवस्था आधुनिक गुप्तचर व्यवस्था से किसी प्रकार कम नहीं थी।

इसी क्रम में 'दूत' की ऐतिहासिक झलक देखें, तो दूत की उपयोगिता एवं आवश्यकता को सभी आचार्यों ने एक समान माना है। राजाओं की पारस्परिक बात तथा संबंध स्थापित करने का एक प्रधान साधन 'दूत' ही होता था। 'अर्थशास्त्र' में कौटिल्य दूत को 'राजा का मुख' मानते हैं। जब कभी अनेक राजाओं को बड़े यज्ञों, सम्मेलनों में बुलाया जाता था, तो उस समय दूत का प्रयोग किया जाता था। वैदिक काल में भी राजनयिक संबंधों की व्यवस्था अथवा दूत–कर्म का उल्लेख मिलता है। रामायण और महाभारत में दूत कर्म के संबंध में अनेक उदाहरण मिलते हैं। रामायण में हनुमान और अंगद तथा महाभारत में श्रीकृष्ण और संजय ने विभिन्न अवसरों पर किसी–न–किसी प्रकार का दूत–कार्य किया। सिकन्दर महान के आक्रमणों के दौरान बहुत–से भारतीय राजाओं ने यूनानी विजेता से संधिवार्ता के लिए दूतों का प्रयोग किया। शुक्रनीति के अनुसार दूत इंगित, आकार, चेष्टा को जानने वाला, स्मृतिवान, देशकाल का ज्ञाता, संधि और विग्रह आदि की बातें करने में समर्थ, वाग्मी और निर्भीक होना चाहिए।8 महाभारत में भीष्म ने कहा है कि जो पुरुष कुलीन, संपन्न परिवार का, वाग्मी, दक्ष, प्रियभाषी, यथोक्तवादी और स्मृतिवान हो, वही दूत पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए।9 इसी प्रकार बी.के. सरकार का कथन है कि एक दूत को दूसरे के आन्तरिक विचारों को जाननेवाला, मुख के उतार–चढ़ावों अथवा चेष्टांगों तथा हाव–भावों का ज्ञाता, स्मृतिवान, देश–काल का ज्ञाता तथा अच्छा बोलने वाला होना चाहिए।1 0

मनु के अनुसार दूत ही संधि एवं विग्रह का कारण होता है। यदि दूत का संदेश सुनकर शत्रु राजा रुष्ट हो जाए, तो दूत को इस प्रकार कहना चाहिए–''सभी राजा आप और अन्य दूत के मुख से ही बातें जानते हैं। अतः धमकी दिए जाने पर भी दूत को संदेश देना ही पड़ता है। नीच जाति (चंडाल) के दूतों को भी नहीं मारना चाहिए। उस दूत की तो बात ही क्या, जो ब्राह्मण है। यह जो मैं कह रहा हूँ दूसरे का संदेश है, इसे कह देना मेरा कर्तव्य है।''1 1 महाभारत के शांति पर्व में भी लिखा गया है कि किसी आपद् में भी दूत–वध न करें, क्योंकि दूत को मारनेवाले राजा मंत्रियों सहित नरकगामी हुआ करते हैं।1 2 काणे ने एक बहुत ही अर्थगर्भित बात कही है–''दूत प्रकाश में कार्य करता है, किन्तु चार (गुप्तचर' छिपकर।"1 3

रामकथा का गायन करनेवाले तुलसी की कृतियों में समाज और संस्कृति की तत्कालीन छायाओं को प्रकाशित करने की चेष्टा समाजशास्त्रीय पुनर्रचना से संबद्ध रही है। यूँ तो तुलसीदास पर अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखे गए हैं, कई शोध कार्य भी हुए हैं, लेकिन इनमें उनकी राजनीति, कूटनीति, दूत प्रणाली एवं गुप्तचरी अवधारणाओं पर कम ही विचार हुआ है। तुलसी के कृतित्व में राजनीति, लोकनीति तथा समाज के सभी पक्षों का बहुविध एवं अन्तर्विरोधपूर्ण दिग्दर्शन मिलता है। 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'दोहावली' तथा 'मानस' के अन्तर्साक्ष्यों एवं बहिर्साक्ष्यों के आधार पर ईमानदारी से कहा जा सकता है कि अपने युग के यथार्थ तथा अपने विश्वासों के आदर्शों के बीच तुलसी ने ही संभवतः सबसे अधिक संघर्ष किया था। इसीलिए कबीर के बाद तुलसी में ही सर्वाधिक आत्मकथात्मक रेखाएँ मिलती हैं।

'रामचरितमानस' में प्राप्त राजनैतिक चित्रणों में दूतों का यथास्थान उचित उल्लेख मिलता है। तुलसी ने राज्यों के पारस्परिक संबंधों को बनाए रखने के लिए दूतों को सर्वत्र महत्व दिया है और उनके राज्योचित सम्मान की ओर दृष्टि डाली है। धनुर्भंग के पश्चात् राजा जनक के दूत दशरथ के पास भेजे जाते
हैं। विश्वामित्र जनक को निर्देशित करते हैं–
''दूत अवधपुर पठवहु जाई।
आनहिं नृप दसरथहिं बोलाई।।''1 4

इस पर जनक तत्क्षण मुनि की आज्ञा का पालन करते हैं–
''मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला।
पठए दूत बोलि तेहिं काला।।1 5

परिणाम यह हुआ–
''पहुँचे दूत राम पुर पावन।
हरषै नगर बिलोकि सुहावन।।
भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई।

दशरथ नृप सुनि लिए बोलाई।।''16

प्रसंग साक्षी हैं कि राजा दशरथ के दरबार में दूतों का बहुत सम्मान किया जाता था। उनके प्रति सद्व्यवहार तथा राज–सत्कार में कोई कमी नहीं रहती थी। राजा स्वयं उठकर पत्र ग्रहण करते हैं तथा विदेह राजा के भेजे हुए दूतों के प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करते हैं। दूतों को निकट आसन देते हैं। उनके राज्य एवं स्वामी के प्रति प्रेम एवं निष्ठा व्यक्त करते हैं। इसके पश्चात् दूतों के निवास का प्रबंध करके ही दशरथ महल में जाते हैं। तुलसी की दष्टि में दूतों का सम्मान एवं महत्त्व भारतीय सांस्कृतिक गरिमा का अंश है।

अयोध्याकाण्ड में दशरथ की मृत्यु के बाद मुनि वशिष्ठ भरत को ननिहाल से बुलाने के लिए दूत भेजते हैं–

''तेल नाव भरि नृप तनु राखा।
दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा।।
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू।
नृप सुधि कतहूँ कहहु जनि काहू।।''17

दूत उत्काल मुनि की आज्ञा का पालन करते हैं और भरत को बुलाने के लिए तेजी से चले जाते हैं।

सीताहरण के बाद तुलसी ने जिन दूतों का वर्णन किया है, उनमें दो पक्षों के दूत दृष्टिगोचर होते हैं। एक राम पक्ष के और दूसरे रावण पक्ष के। जंगली जातियों के दूत राम पक्ष के दूतों के अंतर्गत आते हैं। मिसाल के तौर पर सुग्रीव के भेजे हुए दूत सीता की खोज में जाते हैं। किष्किंधाकाण्ड में राम–सुग्रीव मित्रता के बाद सुग्रीव दूत भेजता है–

''अब मारुतसुत दूत समूहा।
पठवहुँ जहँ तहँ वानर जूहा।।''

साथ ही वे धमकी भी देते हैं–

''कहेहु पाख महुँ आव न जोई।
मोरे कर ताकर बध होई।।''

उधर हनुमान भी तुरन्त दूतों को बुलाते हैं–

''तब हनुमंत बोलाए दूता।
सब कर करि सनमान बहूता ।।
भय अरू प्रीति नीति देखराई।
चले सकल चरनन्हि सिरुनाई।।''

यदि गौर से देखा जाए तो दूतों से कार्यसिद्ध करवाने के लिए हनुमान की नीति अत्यंत सराहनीय है। उन्होंने पहले तो दूतों को अत्यधिक सम्मान दिया, फिर उनके प्रति भय और प्रीति दोनों का ही प्रयोग किया। इन वानरों को यदि गुप्तचर भी कहा जाए, तो अनुपयुक्त न होगा। यह अलग बात है कि तुलसी ने इनके लिए सर्वत्र 'दूत' नामक एक ही शब्द का प्रयोग किया है। कारण यह कि ये किसी राज्य विशेष में नहीं भेजे गए थे, केवल 'सीता कहाँ है', इसकी सूचना लाने के लिए ही सब दिशाओं में भेजे गए थे। प्रखर संदर्भ है कि सुन्दरकाण्ड में जाम्बवान की अनुमति पर हनुमान दूत कार्य करते हैं। वे सीता की खोज में लंका जाते हैं। मार्ग में सागर उन्हें राम का दूत मानकर आदर देता है। वह अन्दर छिपे हुए मैनाक पर्वत से हनुमान को विश्राम देने के लिए कहता है, लेकिन हनुमान भी कोई साधारण दूत नहीं थे जो लक्ष्य को भूलकर अपने सुख, स्वार्थ एवं भोग में लीन हो जाते। अतः वे कहते हैं–

''रामकाज कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।''20

इसके बाद हनुमान लंका के द्वार पर पहुँचते हैं। यहाँ उनका द्विविध रूप हमारे सामने आता है, दूत एवं गुप्तचर का रूप–

''पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरों निसिनगर करों पइसार।।''

फिर हनुमान तुरन्त मच्छर का रूप धारण कर लेते हैं। वे तो गुप्त रूप से सीता की सूचना प्राप्त करने आए थे, परन्तु उन्हें सूक्ष्म रूप धारण करने की आवश्यकता हुई। द्वार पर लंकिनी राक्षसी पर प्रहार किया। आश्चर्य नहीं कि वह भी उन्हें 'देखउँ नयन राम कर दूता' कहकर ही संबोधित करती है। हनुमान का गुप्तचर का स्वरूप निम्न पंक्तियों में स्पष्ट होता है–

''अति लघु रूप धरेऊ हनुमाना।
पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।
मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा।
देखे जहाँ तहँ अगनित जोधा।।''

हैरत नहीं कि गुप्त रूप से ही हनुमान ने सारे महल की खोज कर ली। विभीषण को राम नाम में लीन देखकर वे ब्राह्मण का रूप धारण कर उससे परिचय करने जाते हैं। उस समय भी हनुमान में ये सब लक्षण गुप्तचर के ही थे। वे चुपचाप अशोक वाटिका में सीता को देख लेते हैं और साथ ही रावण द्वारा उन्हें भय दिखलाने का दृश्य भी। हनुमान ऊपर वृक्ष पर से ही सीता के सम्मुख मुद्रिका डाल देते हैं। इसके बाद वे प्रत्यक्ष सम्मुख होकर बताते हैं कि हे माता जानकी, मैं श्रीराम का दूत हूँ। फिर हनुमान राम का संपूर्ण संदेश सीता को सुनाते हैं। यह सही है हनुमान दूत रूप में राम की ओर से संदेश लेकर सीता के पास आए थे। चूँकि अपने वास्तविक रूप में उनका सीता से भेंट करना असंभव था, इसलिए उन्हें गुप्तचर का रूप धारण करना पड़ा। सीता के सन्देह प्रकट करने पर ही वे 'कनक भूधराकार सरीरा' होते हैं।

अशोक वाटिका का विध्वंस करने पर जब मेघनाद द्वारा नागपाश में बाँधे जाने पर वे रावण के पास ले जाए जाते हैं, तब वे अपना परिचय देते हैं कि मैं राम का दूत हूँ–

''तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि।''23

दूत के साहस और स्वामी भक्ति के कई संदर्भ हमें 'मानस' में मिलते हैं। रावण द्वारा हनुमान के वध की आज्ञा दिए जाने पर विभीषण कहते हैं कि दूत को मारना नीति विरुद्ध है, इसे कोई अन्य दण्ड दीजिए। तब दूत हनुमान की पूँछ को जलाकर उनका अंग–भंग करने का दण्ड सुनाया जाता है।

साधारण तौर पर राज–समाजों में दूत के प्रति ऐसा व्यवहार नहीं होता, लेकिन राक्षसराज ने अपनी मंद बुद्धि के कारण ही ऐसा दुर्व्यवहार किया। हनुमान लौटकर राम को सीता का संदेश देते हैं–

''मन क्रम वचन चरन अनुरागी।
केहिं अपराध नाथ हों त्यागी।।''

इस प्रकार हनुमान ने अपने दूत कार्य को बड़ी बुद्धिमत्ता एवं सफलता से पूर्ण किया। लंकाकाण्ड में राम जामवंत की सम्मति पर बालिपुत्र अंगद को दूत बनाकर रावण के दरबार में 'संधि–वार्ता' के लिए भेजते हैं। वे कहते हैं– 'लंका जाहु तात मम कामा', लेकिन केवल इतना ही संकेत देते हैं–

''काजु हमार तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई।''24

दूत अंगद रावण की सभा में पहुँचते हैं। संपूर्ण सभा आदर के लिए खड़ी हो जाती है, लेकिन शत्रु पक्ष के दूत का इतना सम्मान रावण की राक्षसी प्रवृत्ति के विरुद्ध था। मार्क का तथ्य यह है कि तुलसी ने दूत अंगद की कूटनीति चरम सीमा पर दिखाई है। अंगद अपने आगमन का प्रयोजन इस प्रकार बतलाते हैं–

''मम जनकहि तोहि रही मिताई।

तव हित कारन आएउँ भाई।।''25

इसके बाद वे रावण कुल की प्रशंसा करने लगते हैं। यह वाक् चातुर्य दूत का विशेष गुण है। अंगद रावण से कहता है–

''सत्य कहहि दस कंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
होउ न हमरे कटक अस तो सन लरत जो सोह।।26

ऐसी कूटनीति पूर्ण बातें चतुर दूत ही कर सकते हैं। तुलसी दूत के इस गुण से पूर्णतया भिज्ञ थे। अंगद पुनः रावण से कहते हैं कि तुम में लाज, क्रोध, अहंकार कुछ नहीं है। तुमने हनुमान का कुछ नहीं बिगाड़ा। यही सुन्दर स्वभाव देखकर मैं आपके दर्शन के लिए आया हूँ। अंगद के मुख से राम का गुणगान सुनकर रावण कहता है कि यदि तेरे स्वामी इतने बड़े योद्धा हैं–

''तौ बसीठ पठवत केहि काजा।
रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा।।27

अंगद का रावण से यह कथन है कि ''मैं तुम्हें मारने के लिए पर्याप्त था; किन्तु राम की आज्ञा नहीं है।'' यह कथन इस तथ्य का संकेत है कि प्राचीन काल के दूत मनमानी राजनीति का प्रयोग न करके अपने स्वामी राजा की ही आज्ञा का पालन करते थे। रोष में आकर उन्होंने स्वेच्छा से शत्रु से कभी अनधिकार चेष्टा नहीं की, किन्तु रावण ने राम–पक्ष के दूतों का कभी समादर नहीं किया, जबकि उसके दूतों की राम ने सदैव रक्षा की और कभी भी उनके साथ दुर्व्यवहार नहीं होने दिया।

दूसरे पक्ष में रावण के दूत हमारे सामने आते हैं। विभीषण के राम की शरण में चले जाने पर पीछे से रावण के दूत तट पर उसे बुलाने के लिए आते हैं–

''जबहिं विभीषन प्रभु पहिं आए।
पाछे रावण दूत पठाए।।''28

वानर पहले तो दूत शुक को बाँध लेते हैं, किन्तु बाद में लक्ष्मण उसे पास बुलाकर रावण के नाम पत्र देते हैं। दूत शुक ने राम की सेना का संपूर्ण पराक्रम रावण को सुनाया और लक्ष्मण का पत्र भी दे दिया जिसमें लिखा था कि या तो राम की शरण में आ जा या राम के बाण रूपी अग्नि में पतंगा बन जा। रावण पुत्र प्रहस्त उसे समझाता है–

''प्रथम बसीठ पठऊ सुनु नीति। सीता देह करहु पुनि प्रीति।।''

ज़ाहिर है कि उस काल में भी राजनैतिक संधि करने के लिए पहले दूत भेजकर समझौता करने की प्रथा थी। तत्पश्चात् उसे कार्यान्वित किया जाता था।

'रामचरितमानस' में गुप्तचरों की महती भूमिका का भी उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम अरण्यकाण्ड में मारीच ही रावण का गुप्तचर बनकर सामने आता है। रावण उससे आग्रह करता है–

''होइ कपटमृग तुम्ह छलकारी।
जेहि विधि हरि बानाँ नृपनारी।।''30

मारीच को तो राम के ईश्वरीय प्रभाव पर श्रद्धा थी, किन्तु वह रावण के आग्रह एवं आतंक के कारण कपटमृग बनकर वन में जाता है और राम–लक्ष्मण को अपनी ओर बुलाने का कारण बनता है। उधर रावण भी गुप्तचर का ही रूप धारण करता है–

''सून बीच दसकंधर देखा।
आवा निकट जती के वेषा।।''31

रावण संन्यासी के वेष में भिक्षा माँगने जाता है और सीता को सूनेपन में देखकर बलपूर्वक रथ पर बैठाकर ले जाता है।

लंकाकाण्ड में जब मेघनाद वानर यूथपतियों द्वारा प्रताड़ित किया, जाकर लंका पर फेंक दिया जाता है और मूर्च्छित हो जाता है, तब मूर्च्छा टूटने पर उसे पिता से लज्जा आती है। अतः वह पर्वत गुफा में यज्ञ करने लगता है, अजेय होने के लिए। विभीषण को इस यज्ञ की सूचना मिल जाती है और वह तुरन्त राम को इसका भेद बताकर यज्ञ विध्वंस के लिए वानर योद्धाओं को भेजने की सम्मति देते हैं। इस प्रसंग से स्पष्ट है कि विभीषण के गुप्तचर अत्यधिक सतर्क एवं सजग थे, जो रावण पक्ष की गतिविधियों का शीघ्र पता लगाकर अपने स्वामी को सूचित कर देते थे। युद्ध काल में यह गुप्तचर विभाग विशेष उपयोगी सिद्ध होता था। यह बात विशेष रूप से लक्ष्य करने की है कि तुलसीदास ने सीता–परित्याग के दुःखद प्रसंग का वर्णन करने से पूर्व ही अपने ग्रंथ की समाप्ति कर दी। अतः आदिकवि वाल्मीकि की भाँति अयोध्या की सामाजिक स्थिति जानने हेतु गुप्तचर विभाग का उपयोग करने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला।

संक्षेप–सार में कहना है कि मनुष्य के अस्तित्व काल से ही उसमें अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, विकास–विस्तार, विपक्ष को क्षति पहुँचाना आदि प्रवृत्तियाँ उसकी सद्प्रवृत्तियों पर सदैव हावी रही हैं। वह ईश्वर को भी चुनौती देता रहा है। शत्रुता की हरीतिमा को बनाए रखने तथा विलोम शत्रुता से स्वयं को बचाए रखने की भावना ने दूत एवं गुप्तचर प्रणाली को जन्म दिया। इन प्रणालियों की चालों, कारनामों तथा षड्यंत्रों से रक्तरंजित इतिहास के पृष्ठ खुले पड़े हैं। एक फर्क देखने को अवश्य मिलता है कि ऋग्वेद, रामायण एवं महाभारत कालों में किसी नारी ने जासूस, दूत अथवा गुप्तचर की भूमिका कतई नहीं निभाई, भले ही वह युद्धों का कारण बनती रही। आज के इस भीषण वैज्ञानिक युग एवं उन्नत प्रौद्योगिकी के समय में दूत एवं गुप्तचरी की पूर्व की परिभाषाएँ बदल गई हैं, इनसे जुड़े मूल्य एवं नीतियाँ भी मर्यादा खो चुकी हैं। पूरी 20वीं शताब्दी और 21वीं सदी के प्रारंभिक दो दशक युद्धों एवं आतंकवादी गतिविधियों से हुए नरसंहार एवं प्रकृति की लहुलुहानगी की सच्ची तस्वीर पेश करते हैं। भारत ने कभी भी विस्तारवादी अथवा साम्राज्यवादी नीति नहीं अपनाई। प्रेम, शांति, अहिंसा सदाचार, भाईचारा, विश्वबन्धुत्व एवं मैत्री भारत के सांस्कृतिक स्तंभ हैं। इनका लक्ष्य देश का विकास एवं आत्मनिर्भरता ही है और इन्हीं की परिधि में यहाँ की दूत–गुप्तचरी प्रणालियाँ आज भी कार्य करती हैं।

संदर्भ

1. :राजानः चार चक्षुषः', विष्णुधर्मोत्तर, 2.24.63
2. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी: हिन्दू राज्यशास्त्र, पृ. 202–203
3. परमात्मा शरणः प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ. 109
4. चारः सुविहितः कार्यः आत्मनश्च परस्य वा।
पाषण्डांस्ता पसादींश्च पर राष्ट्रेषु योजयेत्।। आदि पर्व, अध्याय 139, श्लोक 63
5. द्रोणपर्व, 75/4
6. काणे: धर्मशास्त्र, खंड–3, पृ. 131
7. 'दूत मुखा वै राजान्', अर्थशास्त्र, अधिकरण–1, अध्याय 16, वार्ता 16
8. शुक्रनीति, अध्याय–2, श्लोक 86
9. महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 85, श्लोक 29
10. बी. के सरकारः द पॉलिटिकल इन्टीट्यूशन्स एण्ड थियोरी ऑफ हिन्दूज, 1922, 9.71
11. अर्थशास्त्र, अधिकरण–1, अध्याय 16
12. महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 85, श्लोक 25
13. काणे: धर्मशास्त्र, खंड तीन, पृ. 129

14.गोस्वामी तुलसीदास:रामचरितमानस,बालकाण्ड,पृ.141
15.वही,पृ.41
16.वही,पृ.142
17.वही,अयोध्याकाण्ड,पृ.245
18.वही,किष्किंधाकाण्ड,पृ.364
19.वही,सुन्दरकाण्ड,पृ.371–372
20.वही,पृ.372
21.वही,पृ.373
22.गोस्वामी तुलसीदास:रामचरितमानस,सुन्दरकाण्ड,पृ.374
23.वही,पृ.374
24.वही,लंकाकाण्ड,पृ.412
25.वही,पृ.413
26.वही,लंकाकाण्ड,पृ.416
27.वही,लंकाकाण्ड,पृ.396
28.गोस्वामी तुलसीदास:रामचरितमानस,सुन्दरकाण्ड,पृ.396
29.वही,लंकाकाण्ड,पृ.407
30.वही,अरण्यकाण्ड,पृ.338
31.वहीं,पृ.340

लघुकथा

धारणा

प्रिया देवांगन 'प्रियू'
राजिम, जिला–गरियाबंद, छत्तीसगढ़,
मो.–7697282458

आज बहुत देर हो गई विशाल, मुझे जल्दी जाना था। उनके घर कल बहुत सारे मेहमान आए थे, घर तो चिड़िया का घोंसला बना होगा, काम तो पूछो ही ना...!

जाते ही बुढ़िया की डॉट सुनो सो अलग, ये मालकिन लोग कहाँ किसी की बातें समझते हैं?

रीना अपने पति विशाल से बातें करते–करते काम पर जाने की तैयारी कर रही थी।

रीना! प्लीज..... आज मत जाओ न। विशाल बोला।

रीना..... क्या आज भी तुम जूठे बर्तन साफ करोगी?

हाँ.... रीना दो टूक बोल शांत हो गई और स्लीपर पहन घर से निकल गई।

पूरे रास्ते रीना को बस एक ही सवाल दीमक की तरह खाए जा रहा था, आज तो मेरी खैर नहीं। हे प्रभु! कृपया आज डाँट खाने से बचा लीजिएगा। बड़बड़ाती हुई रीना बुढ़िया के घर पहुँची।

ट्रिन–ट्रिन बेल बजते ही बुढ़िया दरवाजा खोली और ऊपर से नीचे रीना को घूरने लगी। रीना सर नीचे झुकाकर बोली सॉरी आंटी! आज.... थोड़ी...।

हम्म... अंदर आओ। कुछ बोलने से पहले ही बुढ़िया ने रीना को शांत करा दिया। रीना को थोड़ा आश्चर्य हुआ कि आज बुढ़िया शांत क्यों है। अब सुनने को तैयार हो जा रीना... रीना खुद से बातें करने लगी। ये खड़ूस बुढ़िया से कोई नहीं बचा पाएगा।

रीना खुसफुसाती हुई रसोई में गई और देखते ही भौचक रह गई। अरे! ये क्या चमत्कार हो गया? आंटी जी! रसोई का सारा झूठा बर्तन कहाँ है और आज घर भी बहुत साफ सुथरा लग रहा है, कल मेहमान नहीं आए थे क्या?

आए थे चले गए। बुढ़िया बोली।

चले गए, मतलब?

''तुम्हें क्या लगा रीना! आज मैं तुमसे हमारे जूठे बर्तन साफ करवाऊँगी? नहीं–नहीं, मुझे अच्छे से पता है कि आज तुम्हारा पहला करवा चौथ का व्रत है, इसलिए मैं और मेरी देवरानी मिलकर सारा काम खत्म कर दिए, ताकि तुम्हारे निर्जला व्रत में कोई कष्ट ना हो।''

लेकिन आंटी जी!... रीना धीमे स्वर में बोली।

हाँ रीना! तुम भी तो अपने घर की लक्ष्मी हो न और आज तो अपने पति के लिए निर्जला व्रत भी रखा है तुमने। अगर तुम हमारे जूठे बर्तन साफ करोगी, तो मुझे पाप लगेगा।

रीना को ऐसा लगा जैसे कोई साँप सूँघ गया हो। हैरानी से बुढ़िया को एकटक निहारती रही। बातें सुन रीना की आँखों में आँसू की दो बूँदे झलकने लगी।

तुम्हारे आते ही मैंने चेहरा पढ़ लिया था। ऐसे ही धूप में बाल सफेद नहीं किए हैं मैंने। रीना स्टैच्यू की तरह खड़ी रही। तभी बुढ़िया बोली–''रीना! देखो, ये मेरी साड़ी और ये मेकअप किट, तुम पर बहुत अच्छी लगेगी।

पर आंटी जी इसकी क्या जरूरत!

नहीं री... ये रखो, मेरा आशीर्वाद समझ लो। बुढ़िया की बात नहीं मानेगी? बुढ़िया मुस्कुराती हुई बोली।

मुझे माफ कर दीजिए आंटी जी! मैंने आपके बारे में न जाने कैसी गलत धारणा बना ली थी। रीना मायूस होकर बोली।

अच्छा आंटी जी! मैं चलती हूँ कल समय से आ जाऊँगी।

न.... न... कल तुम आराम करना, परसों मिलते हैं।

जी, आंटी जी!

रीना सुनो....। रीना झट से पीछे मुड़ी।

बेटा मैं तो तुम्हें देख नहीं पाऊँगी, ये साड़ी और मेकअप में तो फिर...?

कोई बात नहीं, आंटी जी! मैं आपको व्हाट्स एप पर फोटो शेयर कर दूँगी।

फिर क्या था..... दोनों की हँसी घर में गूंजने लगी और रीना भगवान को धन्यवाद करती हुई आगे बढ़ चली।

आलेख

शिक्षा में प्रेय और क्षेम का समन्वय

डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय
पी.टी. रोड, अलीगढ़
मो.–9897452431

वस्तुतः शिक्षा, संस्कृति, कला एवं दर्शन में शिवम् और सुन्दरम् का समन्वय तत्त्व और रूप का समन्वय होता है। अन्य कलाओं में रूप का प्राधान्य होता है, किन्तु शिक्षा और साहित्य के स्वरूप में रूप और तत्त्व दोनों का सहज समन्वय है, जिसका मूल शब्द की सार्थकता है, उपादेयता है। अर्थ शब्द में चिन्मय भाव निहित है जबकि शब्द दर्शन में शब्द को चिद्रूप मानकर शब्द और अर्थ के इस समन्वय को एकल की सीमा तक पहुँचा दिया है। शिक्षा और दर्शन का भी सफल और पूर्ण रूप तत्त्व और रूप के समन्वय से, सामंजस्य से, तादात्म्य से ही निर्मित होता है। साहित्य और शिक्षा में भी यह तत्त्व शिवरूप ही है। वास्तव में मंगल ही जीवन का तत्त्व है, जिसे हम कल्याण भी कहते हैं। यह चिन्मय रूप में भी समात्वभाव की सृजनात्मक प्रेरणा है। इस प्रकार यह भावबोध शिवं का ही नहीं सुन्दरम् का भी मूल स्वरूप है। यही कारण है कि समत्वभाव के धरातल पर सुंदरम् की अभिव्यक्ति शिक्षा के सुन्दर और मंगलमय रूपों की सृजनात्मक प्रेरणा बनकर शिवम् और सुन्दरम् के सहज समन्वय में चरितार्थ होती है। शिक्षा दर्शन में भी शिवम् का तत्त्व सुन्दरम् के रूप के साथ समीकृत होकर, समन्वित होकर शिवशिक्षादर्शन की सृष्टि करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिवम् का सामान्य अर्थ छात्र का हित है, कल्याण है। व्यापक दृष्टि से छात्र जीवन के समस्त मूल्यों का समाहार इससे जुड़ा हुआ है। छात्रों की जितनी आकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ एवं एषणाएँ हैं, उन सभी की पूर्ति छात्र–हित की पूर्णता के लिए आवश्यक है। इन हितों की प्राप्ति छात्र और शिक्षक दोनों के लिए सुखकर और प्रीतिकर होती है। इनकी प्रवृत्ति प्रिय होने के कारण इन्हें प्रेय कहा जाता है। इनके अतिरिक्त शिक्षा जीवन के जो अन्य मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक लक्ष्य हैं, उन्हें हम सांस्कृतिक हित कहते हैं। इन सांस्कृतिक हितों को ही मुख्यरूप से श्रेय कहा जाता है। है। सांस्कृतिक भावों का विस्तार हम साहित्य, शिक्षा एवं शिक्षा दर्शन में देखते हैं, सांस्कृतिक श्रेयों का समन्वय निहित होता है। यह समन्वय शिक्षा और शिक्षादर्शन की समृद्धि का घोतन करता है। इस समन्वय में प्राकृतिक प्रेम समाज के सामान्यहित में समन्वित होकर सांस्कृतिक समृद्धि की प्राकृतिक भावभूमिका निर्माण करता है। सांस्कृतिक सुख का स्वरूप आनन्दमय होता है जिससे शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों का हित जुड़ा होता है। यह आनंद मन और आत्मा का भाव है। सुख शरीर का धर्म है। है। उपनिषदों में इस आनन्द को आध्यात्मिक माना गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में 'यो वै भूमा तदेव सुखम्' कहा गया है। शिक्षा और शिक्षादर्शन में इसका आशय अनन्त आध्यात्मिक आनन्द से है।

कठ उपनिषद् में जीवन के दो लक्ष्यों का संकेत मिलता है। जिन्हें साहित्य और शिक्षा में प्रेय और श्रेय संज्ञा दी गई है। वास्तव में प्रेय और श्रेय में समन्वयात्मक तत्त्व है, दोनों सामंजस्य धर्मा हैं। प्रेय मुख्यतः इन्द्रियों और मन के विषय हैं, जबकि श्रेय आत्मिक अध्यवसाय और साधना के विषय हैं। सांस्कृतिक सुख और आनन्द के आकांक्षी–अभिलाषी शिक्षाविद् संकल्प द्वारा श्रेय मार्ग का अनुसरण करते हैं। शिक्षा में प्रेय के श्रेय में पूर्णतः समन्वित होने पर एक मंगलकारी, कल्याणकारी व्यवस्था बनती है, जिसे हम सामाजिक निःश्रेयस कहते हैं। उपनिषद् का स्पष्ट मत है कि क्षेत्र ही जीवन का श्रेष्ठ लक्ष्य है जिसकी साधना शिक्षा के द्वारा की जा सकती है। उपनिषद् श्रेय को आध्यात्मिक मानता है, क्योंकि आध्यात्मिक दर्शनों में श्रेय को व्यक्तिगत माना जाता है। आध्यात्मिक श्रेय की साधना भी व्यक्ति के केन्द्र में होती है।

आधुनिक भारतीय शिक्षा का उद्देश्य बालकों का आध्यात्मिक विकास करना चाहिए। शिक्षा दार्शनिक अरविन्द घोष ने कहा है कि ''हममें से हर एक में कुछ दैवीय है, कुछ अपना स्वयं का है, जो इसे पूर्णता और शक्ति प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए – विकसित होने वाली आत्मा को सर्वोत्तम प्रकार से विकास करने में सहायता देना और श्रेष्ठ कार्य के लिए पूर्ण बनाना। उपनिषदों में अनेक प्रसंगों में सामाजिक सद्भाव में आध्यात्मिक श्रेय की अभिव्यक्ति के संकेत मिलते हैं। इस प्रकार श्रेय का वास्तविक रूप आध्यात्मिक एवं सामाजिक है। बाह की धारणाएँ भावना में समन्वित होकर ही जीवन के अनुशासन की प्रेरणा बनती है, जिसे साहित्य साधना कहते हैं। संयम और साधना से समन्वित और मर्यादित होकर प्रेय के प्राकृतिक उपकरण संस्कृति के आधार बनते हैं। साधना, संयम एवं मर्यादानुपालन का सांस्कृतिक उद्देश्य प्रेय की प्रवृत्ति में स्वस्थ तृप्ति की संतुष्टि का समाधान है। यह प्रतिष्ठित प्रेय भावात्मक रूप से सांस्कृतिक उन्नयन और साधना का सहयोगी सिद्ध होता है। प्रेय के क्षेत्र में सांस्कृतिक भावों का विस्तार और सांस्कृतिक भावों में प्रेय का अन्वय सांस्कृतिक समन्वय का मूलसूत्र है। यह समन्वय ही सामंजस्य का वाचक और संस्कृति का स्वस्थ रूप है। यही शिक्षा और शिक्षादर्शन की प्रेरणा और लक्ष्य भी है। इस समन्वय में, सामंजस्य में, तादात्म्य में प्रेय का रूप श्रेय से समन्वित हो जाता है। यही कारण है कि वह व्यक्तिगत स्तर पर और सामाजिक स्तर पर मंगल का माध्यम और साधन बन जाता है।

वस्तुतः श्रेय से मंडित और समन्वित प्रेय की अनुरक्ति अक्षुण्ण रहते हुए भी श्रेय के संस्कार में उसे मर्यादा मिल जाती है। इस समन्वय में प्रकृति और संस्कृति, वृत्ति और प्रवृत्ति तथा प्रेय और श्रेय का भेद मिट जाता है, किन्तु दोनों में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति और श्रेय सांस्कृतिक प्रेम के उपकरण बन जाते हैं जिसका संबंध शिक्षा और शिक्षादर्शन से होता है। श्रेय का स्वरूप मन और आत्मा के भाव हैं, लेकिन प्रेय के समन्वित होने पर वे चिन्मय भाव शिक्षा में मूर्त हो उठते हैं। यह श्रेय शिवम् का अपर नाम है, वाचक है। आत्मदान जो शिक्षक शिक्षा के माध्यम से करता है, उसका एक विशिष्ट दर्शन होता है। यह आत्मदान छात्रों की विकासशील चेतना में अपनी चेतना की विभूति का भावयोग है। शिक्षा में शिक्षक का आत्मगौरव और आत्मस्वतंत्रता के साथ उसको समन्वयात्मक शिक्षण कला एवं सामंजस्यवादी प्रवृत्ति ही उसकी निपुणता प्रमाणित करती है। श्रेय और संस्कृति तथा शिक्षादर्शन के क्षेत्र में शिक्षादार्शनिक का गौरव छात्र की कुशलता का साधक बनता है। श्रेय का आत्मदान एक सृजनात्मक शिक्षक धर्म है, क्योंकि यह सृजन मुख्यतः सांस्कृतिक श्रेय के चिन्मय भावों की रचना एवं स्थापना है। शिक्षा में संस्कृति का सृजनात्मक रूप शिक्षक द्वारा परम्परागत रूप में सफल होता है, जिसमें नव्य दृष्टि का उन्मेष भव्यता के साथ होता है। आत्मदान का भाव योग के स्वरूप और धर्म के साथ–साथ शिक्षक–शिक्षार्थी के आत्मनिर्माण की प्रेरणा से भी बनता है, जिसके परिणाम स्वरूप सांस्कृतिक परम्परा अक्षुण्ण रहती है। शिक्षक का गौरव, उसकी स्वतंत्रता का आदर–सम्मान आत्मदान के शिवम् के सृजनात्मक धर्म के भावात्मक लक्षण है। यही कारण है कि साहित्य, कला,

शिक्षा, संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था में शिवम् की भावात्मक साधना के तत्त्वों का सन्निधान आवश्यक है, अपेक्षित है। वास्तव में आत्मा अविनाशी है, शाश्वत है, चिन्मय है। वह स्वप्रकाश और आलोकमय है। इसीलिए शिक्षा में शिक्षक शिक्षार्थियों के समक्ष शिक्षादर्शन के माध्यम से आत्मदान करता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का उपदेश और संदेश एक प्रकार से शिक्षक के आत्मदान का ही रूप है।

जीवन के सांस्कृतिक सत्य का प्रकाशन शिक्षा में शिक्षक के द्वारा ही सम्भव होता है, जिसके मूल में उसका समन्वयवादी शिक्षादर्शन होता है। इस सत्य का प्रकाशन समस्त सांस्कृतिक विकास की आधारशिला पर होता है। हमें जानना चाहिए कि शिक्षक का ओजस्वी और तेजस्वी व्यक्तित्व ज्ञानात्मक प्रेरणा से समन्वित होकर शिवम् का आत्मदान सांस्कृतिक श्रेय के विकास की स्फूर्ति एवं चेतना बनता है, जिसके कारण शिक्षक राष्ट्र निर्माता कहलाता है। शिक्षक ही शिक्षा और शिक्षादर्शन के माध्यम से सृजन की प्रेरणा बनकर सांस्कृतिक श्रेय की समृद्धशाली परम्परा को अमरत्व प्रदान करता है। अतएव सृजन की प्रेरणा जीवन की गतिशील वृत्ति है, जो शिक्षा में शिक्षादर्शन के माध्यम से एक प्रवृत्ति बन गई है। गति और प्रगति के लिए शिक्षाक्षेत्र में दिशाबोध और मार्गदर्शन अपेक्षित है, जिसे एक मात्र शिक्षक ही अपने शिक्षादर्शन द्वारा सहज सम्पन्न कर सकता है। उसकी सृजनात्मक प्रेरणा भी समन्वयवादी शिक्षण द्वारा सफल हो सकती है।

शिक्षक का ज्ञानात्मक आलोक उसकी आत्मा का विस्तार है। प्रेरणा आत्मा की स्फूर्ति है, चेतना है। इस प्रकार आलोक और प्रेरणा शिक्षक के आत्मदान के दो बीज तत्त्व हैं, जिनके बल पर शिक्षक शिक्षण में आत्मदान को सृजनात्मक परम्परा में सफल होता है। शिक्षण उसके लिए प्रेय है । प्रेय में एक सहज आकर्षण होता है। इसीलिए प्रेय पर आधृत परम्परा का निर्वाह और निर्माण अधिक सरलता से समन्वयवादी शिक्षक ही कर सकता है और करता है। शिक्षा, साहित्य, कला आदि में प्रतिष्ठित प्रेम ही परंपरा को सुदृढ़ एवं सशक्त बनाने में सहायक सिद्ध होता है। स्मरण रहे कि संस्कार और संकल्प के आधार पर ही शिक्षक, कलाकार, शिक्षाविद् अपनी रचनाओं में श्रेय को स्थापित करते हैं। श्रेय में एक प्रेरणादायी वृत्ति होती है, जिसमें प्रकाश और प्रेरणा का सामंजस्य स्थापन होता है, समन्वय होता है। शिक्षा, साहित्य एवं कला में, प्रेय के उपादान में ही सौन्दर्य की सृष्टि संभव हुई है तथा श्रेय का ग्रहण अपेक्षाकृत कम हुआ है। जहाँ पर श्रेय प्रतिष्ठित हुआ है, वहाँ उसमें सौन्दर्य का समन्वय कम ही देखने को मिला है।

वस्तुतः श्रेय में प्रेरणा तत्त्व विद्यमान अवश्य रहता है। उसमें प्रकाश और प्रेरणा का तादात्म्य होता है, समन्वय होता है। यही कारण है कि श्रेय की प्रेरणा अनुकरणात्मक होती है तथा प्रोत्साहन वृत्ति को जागरित करती है। सृजनात्मक प्रेरणा अर्थात् सृजनात्मक परम्परा की प्रेरणा हेतु प्राकृतिक धर्म से आत्मदान तक की प्रेरणात्मक भावभूमि अपेक्षित होती है, जो साहित्य और शिक्षा में ही सहज सुलभ होती है। उपनिषदों का दृष्टिकोण मुख्यतया आध्यात्मिक है। यही कारण है कि श्रेय से उनका आशय आध्यात्मिक श्रेय से है। वेदान्त दर्शन में लौकिक प्रेय आध्यात्मिक क्षेत्र में साधक नहीं है, क्योंकि उपनिषदों और वेदान्त में संन्यास को अधिक महत्त्व दिया गया है। समाज को उन्नति और प्रगति के लिए शिक्षा परमावश्यक है तथा सामाजिक व्यवहारों के प्रतिमान निर्धारण में शिक्षा की अहम भूमिका होती है। गतिशीलता समाज को नवनिर्माण की ओर अग्रसर करती है। जॉन ड्यूबी के कथन से सहमत हुआ जा सकता है कि शिक्षा जीवन–यापन की प्रक्रिया है, जिसमें श्रेय और प्रेय का तादात्म्य देखा जाता है।

प्रेय के साथ श्रेय का सामंजस्य अध्यात्म के द्वारा प्राकृतिक प्रेय के संस्कार एवं उन्नयन के द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार यह सामंजस्यवादी दृष्टिकोण भी आध्यात्मिक ही है।

शैवदर्शन में प्रेय और श्रेय का यह सामंजस्य सर्वाधिक संतुलित रूप में मिलता है, क्योंकि शिव और शक्ति का साम्य इस संतुलन का सूत्र है। शैवदर्शन के शिव, वेदान्तदर्शन के ब्रह्म के सदृस्य ज्ञानस्वरूप हैं। शक्ति सृष्टि की विधात्री है, विधायिनी है, जन्मदात्री है। शिव और शक्ति के तादात्मीकरण के कारण यह सृष्टि सत्य है, यथार्थ है। सत्य और महत्त्व की दृष्टि से भी शिव और शक्ति, आत्मा और प्रकृति का पद समानधर्मा है। यह सादृश्यता, समानता ही शैवदर्शन के साम्य का मर्म है, रहस्य है। वेदान्तदर्शन के अध्यात्म में आत्मा की अधिक महिमा है, महात्म्य है। प्रकृति और प्रेय के प्रति न्याय हेतु शैवदर्शन ने समानता, सादृश्यता एवं साम्य को स्वीकारते हुए भी शक्ति को अधिक महत्त्व दिया है। शक्ति और सामर्थ्य के अभाव में शिव—शिव नहीं, शव हैं।

शिव ने अपने ललाट पर शक्ति का प्रतीक चन्द्रमा धारण कर रखा है तथा जटा में गंगा का निवास भी शक्ति का प्रवाह ही है। चन्द्रकला के प्रतीक में प्रकाश, शांति, वृद्धि एवं आह्लाद का संकेत देखने को मिलता है। गंगा की पावन धारा सृजनात्मक प्रवाह की निरन्तरता, सातत्य का ही संकेत है। शक्ति को अधिक महत्त्व देकर शैवदर्शन ने वेदान्त दर्शन के एकांगी अध्यात्मवाद का परिमार्जन किया है जो शिव और शक्ति में साम्य स्थापित करता है, समन्वय करता है। साम्य का मूलतः आशय समानता और सामंजस्य ही है। इस प्रकार प्रेय और श्रेय तथा प्रकृति और अध्यात्म एक दूसरे के उत्कर्ष में सहायक सिद्ध होते हैं। साम्य और सामंजस्य का रूप शैवदर्शन में सफल हुआ है।

उपनिषदों के आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अनुकूल प्रेम प्राकृतिक है जबकि श्रेय आध्यात्मिक है। प्रेय का आशय उस वस्तु विशेष से है, जो हमें तथा द्रष्टा को प्रिय है। प्रिय वस्तु वह है जिसे हम चाहते हैं। श्रेय का आशय उस वस्तु विशेष से है, जो हमारे लिए कल्याणकारी है, उपयोगी है, महत्त्वपूर्ण है। प्रिय वस्तु को हम चाहते हैं तथा उसके संपर्क में हम सुखानुभूति, सौन्दर्यानुभूति एवं आनन्दानुभूति करते हैं।

प्रेय और श्रेय का संबंध भारतीय समन्वयात्मक संस्कृति से भी है। भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद है। उपनिषद्, षड् दर्शन, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रंथ वैदिक विचारों पर आधारित है। ये भारतीय शिक्षा एवं दर्शन के अक्षय स्रोत हैं। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी आध्यात्मिकता है। वास्तव में प्रेम प्रकृति है, मानववृत्ति की परिणति है, जबकि श्रेय संस्कृति है। प्रकृति जीवनाधार है। अतः स्वस्थ और संतुलित जीवन में प्रेम का समवाय अपेक्षित है। मर्यादानुपालन में प्रेय का श्रेय और संस्कृति के साथ समन्वय आवश्यक है। भारतीय संस्कृति ने आरम्भ से ही भौतिकता और आध्यात्मिकता में समन्वय स्थापित किया है। यह भोगना और त्यागना को साथ–साथ चलाने पर बल देती है। यही कारण है कि भारतीय शिक्षा और दर्शन में भी व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

यजुर्वेद में 32/8 के अन्तर्गत कहा गया है कि ज्ञानी पुरुष उस रहस्यपूर्ण चिरन्तन सत्य या ब्रह्म को देखता है, जहाँ समस्त विश्व एक परिवार हो जाता है– यही तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संकल्पना है, दर्शन है तथा जीवनादर्श है–

वेनस् तत् पश्यन् निहिनम् गृहा सद्।
यत्र विश्व भवति एक नीडम्।।

यूनानी चिन्तक और दार्शनिक ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं, जिनमें सुकरात और उनके शिष्य प्लेटों के नामों का उल्लेख मिलता है। सुकरात के अनुसार सच्चे दार्शनिक वे हैं, जो सत्यज्ञान के प्रेमी हैं। यह

सत्य ज्ञान उन्हें उस चिरन्तन प्रकृति का दर्शन कराता है जो उत्पत्ति और विकृति से परिवर्तित नहीं होती। प्लेटो का कथन है कि जो व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति और नई
बातों को जानने में रुचि प्रकट करता है, जो कभी संतुष्ट नहीं होता, उसे दार्शनिक कहा जाएगा। शॉपनहावर के लिए तो संसार का प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात दार्शनिक है। सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम् मानवीय संस्कृति की सर्वोत्तम उपलब्धि है। भारतीय शिक्षा और दर्शन में तथा सांस्कृतिक सृजन में प्राकृतिक सृजन की समस्त तन्त्रों का तादात्म्य होने के साथ–साथ अभिव्यक्ति के आनन्द और सौन्दर्य का आविर्भाव एवं आत्मदान के शिव का समवाय हुआ है। अतएव प्राकृतिक सत्ता का सत्य चेतना के आविर्भाव एवं अभ्युदय से शिवं और सुन्दरम् से समन्वित होकर सांस्कृतिक धरोहर की पूर्णता में फलित हुआ है– यह एक प्रकार से प्रेय और श्रेय की प्रतिष्ठा है।

पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रियों में सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, कॉमेनियस, रूसो, पेस्टालॉजी, हरबर्ट, फ्रॉबेल आदि ने शिक्षा और शिक्षा–दर्शन में प्रेस को किसी–न–किसी रूप में तात्त्विक विवेचन का आधार बनाया है। कारण है कि प्रकृति और मानवीय प्रवृत्ति का अधिकांश शिक्षा दार्शनिक ने स्वीकार किया है तथा प्रकृति और प्रेय को अपने शैक्षिक दर्शन में ग्रहण किया है, जो स्वाभाविक और उचित है। प्रेय को मात्र प्रेय के रूप में ग्रहण करने से तो प्रेय शैक्षिक विचारधारा की सृष्टि होती है, लेकिन शिक्षादर्शन को शिवम् के रूप में स्थापित करने हेतु प्रेय को मर्यादित संस्कार देना आवश्यक है। शिक्षा के इस प्रेय उपादान को शिवम् का संस्कार पाश्चात्य शिक्षाशास्त्र में बहुत कम प्राप्त हुआ है। प्रकृति की प्रबलता और उसकी प्रभविष्णुता की ओर पाश्चात्य चिंतकों का अधिक झुकाव और लगाव रहा है। सत्य का उद्घाटन करने वाले शिक्षा–दार्शनिक सत्य को विज्ञान और तत्त्वशास्त्र का विषय मानते हैं।

वस्तुतः आत्मदान की भावना और साधना के समन्वय से सामंजस्य से सत्य शिक्षा और शिक्षादर्शन में शिवम् की सिद्धि बनता है। साधना के समन्वय के अभाव के कारण ही विज्ञान, धर्म एवं तत्त्वशास्त्र के अनेक तत्त्व मंगलमय और कल्याणकारी बनने में असमर्थ रहे हैं। साहित्य–साधना तथा शिक्षा संकल्प एक आत्मिक अध्यवसाय है, जिसे जागरुक और सजग चेतना के द्वारा ही प्रेरित और प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसीलिए साधना और शिवं के स्वरूप का प्रतिभा में प्रकाशित होना परमावश्यक है, तभी शिक्षादार्शनिक की साधना फलवती सिद्ध होगी। जीवन के समान ही शिक्षा, साहित्य एवं शिक्षादर्शन में शिवं की प्रतिष्ठा के लिए साधना आवश्यक है। भारतीय शिक्षा–दार्शनिकों में यह साधना पाश्चात्य की अपेक्षा अधिक है, क्योंकि उनका जीवन भी
साधनामय था । सत्य के उद्घाटन में प्रेय का प्रभाव प्रतिभा के बंधन को नहीं स्वीकारता, इसीलिए विश्व में शिवसाहित्य, शिवशिक्षादर्शन को सृष्टि करनेवाले शिक्षादार्शनिकों की अपेक्षा महान वैज्ञानिक और तत्त्वदर्शी दार्शनिक अधिक संख्या में हुए हैं। सुन्दरम् की अभिव्यक्ति में भी प्रतिभा का कौशल प्रेय के प्रभाव से ही चमत्कृत होता है। वास्तव में सुन्दरम् प्रतिभा का चमत्कार है जिसके मूल में सत्य की ही वास्तविक पूँजी होती है।

लघुकथा :

व्यष्टि में समष्टि

अवधेश तिवारी
छिन्दवाड़ा

रंग–बिरंगे फूल दूर–दूर तक खिले हुए थे, सारा उपवन जैसे खिलखिला रहा था। मैंने उत्साह में भरकर एक फूल झटके से तोड़ लिया। वृन्त के टूटते ही 'चट्ट' की कर्कश ध्वनि सुनाई पड़ी और... और ओह। यह क्या? उपवन की कली–कली भय से जैसे सिहर उठी। बगीचे की रौनक पल–भर में आधी हो गई... मुझे लगा, एक फूल में सारा उपवन उपस्थित था।

मैं कुछ और आगे बढ़ा। श्मशान–घाट में किसी का दाह–संस्कार हो रहा था। मैंने मन–ही–मन प्रश्न किया, ''कौन मर गया?'' कोई अदृश्य उत्तर भी मन के गहरे तल से ही उठा, ''क्यों पूछता है कौन मर गया?'' एक मनुष्य मर गया, इसलिए मत पूछ कौन मर गया। तेरा ही एक हिस्सा आज मर गया .....''

मुझे लगा, एक मनुष्य के भीतर सारी मनुष्य–जाति उपस्थित है ...

मैं कुछ और आगे बढ़ा और समुद्र तट पर पहुँच गया। समुद्र की प्रचंड लहर हहर–हहर करती हुई तट से टकराई तथा मिट्टी का एक ढेला साथ में लेकर वापस लौट गई...

लेकिन यह क्या... मिट्टी का ढेला बहते ही मुझे करुणा से भरी सिसकी सुनाई पड़ी। हाँ, यह पृथ्वीदेवी की ही सिसकी थी। वह सिसकते हुए कह रही थी–''आज मेरी देह का एक हिस्सा हमेशा के लिए समुद्र के गर्भ में चला गया...''

मुझे लगा मिट्टी के एक ढेले में सारी पृथ्वी उपस्थित थी।.. . मैं भावाभिभूत होकर गहरे सोच में डूब गया। मैंने समुद्र से एक लोटा जल निकाला और समुद्र को अर्घ्य देते हुए उसे प्रणाम किया। मैंने मन–ही–मन समुद्र से प्रार्थना की, ''तुम्हारा तुम्हीं को समर्पित कर रहा हूँ, इसे स्वीकार करो।''

लेकिन वह क्या... मेरे अर्घ्य देते ही समुद्र सशरीर उपस्थित हो गया और मुझसे कह उठा, ''तुम्हारा कल्याण हो वत्स। इसी एक लोटे जल के बिना मैं आज तक अधूरा था। तुमने मुझे संपूर्ण किया। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो..स्वस्तिर्भवतु।''
मुझे लगा, एक लोटे जल में सारा समुद्र उपस्थित था....

कहानी

सौतेला भाई

मनोरंजन सहाय सक्सेना
राजस्थान
मो : 9461093077

वह उस समय चार–पाँच साल का था, मगर उसे उस दिन की काफी बातें याद है। उससे पहले सोकर उठनेवाली उसकी माँ अभी तक सोई हुई थी और वह न तो आज उसे दूध पीने के लिए कह रही थी, न स्कूल के लिए तैयार कर रही थी। घर में तमाम आदमी और औरतें इकट्ठे हो रहे थे और जो भी रिश्तेदार आता रोते–सुबकते ही आ रहा था। पापा आज इस समय उसे बार–बार बाहर पार्क में जाकर बच्चों के साथ खेलने को कहते, तो उसे गुस्सा आ जाता था कि पापा को क्या पता नहीं कि इस समय उसके सारे दोस्त स्कूल गये होंगे। आखिर क्यों सब लोग उसे सोई हुई माँ के पास जाकर पूछने से कि वह अब तक सोई क्यों है? रोक कर उसे वहाँ से हटाना चाहते हैं, सोचकर भारी आक्रोश में था।

कोई दो–तीन घंटे के बाद उसकी सोई हुई माँ को लाल साड़ी पहनाकर सजाया गया था और फिर लकड़ी की सीढ़ी जैसी चीज पर लिटाया गया और उसे माँ को प्रणाम करने को कहा गया, तो वह उसके चारों तरफ लगी भीड़ को देखकर वह घबरा गया और उसकी रुलाई फूट पड़ी थी। उसके बाद सब लोग माँ को कन्धों पर उठाकर ले गये, तो घर में स्त्रियाँ उसे बारी–बारी से गोद में चिपकाने लगीं। दादी से माँ के बारे में कुछ भी पूछते ही वह उसे गोद में भींच लेती और रोने लगती थीं।

सारा दिन इसी तरह निकल गया और शाम हो गई, तो उससे दो साल बड़े फुफेरे भाई ने उसे रहस्यपूर्ण ढंग से समझाया कि उसकी माँ भगवान के पास चली गई है और फिर उसने उसे आकाश की ओर उंगली उठाकर बताया कि उसकी माँ अब इन बहुत से तारों की तरह एक तारा बन जायेगी और उसे ऊपर से देखा करेगी।

पूरी बात तो उसकी ज्यादा समझ में नहीं आई, मगर उसे इस बात का संतोष हो गया कि रात को ही सही, वह माँ को और माँ उसे देख तो लेगी। इस बात को एक साल बीत गया। दादी तो पहले ही उस पर जान छिड़कती थी, अब तो हर समय उसका ध्यान रखना ही मानो उनका जीवन हो गया था। ऐसा करते–करते ही एक दिन दादी को दिल का दौरा पड़ा, तो उस दिन दादी और पापा के बीच पता नहीं क्या बात हुई कि दादी उससे बोली छोटू! मैं अब तेरी देखभाल अच्छी तरह नहीं कर पाती, इसलिये पापा को बोल कि तेरी मम्मी को ले आयें, सुनकर उसने दादी से कहा था कि सब लोग तो कहते हैं कि मम्मी भगवान के पास चली गई है, सो कभी नहीं आयेगी, फिर तभी उसकी दादी ने उसकी बात काट कर कहा था, तेरे पापा और तू सच्चे मन से भगवान से प्रार्थना करेंगे, तो तेरी माँ वापस आ जावेगी, मगर तेरी मम्मी के आने तक तू यह बात किसी को बताना मत, नहीं तो फिर तेरी मम्मी नहीं आवेगी।

दादी के कहने पर वह भगवान से रोज प्रार्थना करने लगा, मगर कभी–कभी किसी–न–किसी का वाक्य अरे बेचारे की माँ तो भगवान को प्यारी हो गई, उसे विचलित कर देता था। फिर करीब एक माह बाद पापा शाम को घर लौटे, तो उनके साथ लाल साड़ी में सजी हुई एक महिला थी। पापा और उस महिला ने दादी के चरण स्पर्श किये और पापा ने उससे कहा–छोटू देखो, तुम्हारी मम्मी आ गई है। अब दादी को तंग मत करना।

पापा के बोल सुनकर और दादी की बात याद करके वह सन्तुष्ट होना चाह रहा था। मगर लोगों के बोल याद आते ही उसके बाल–मन में एक अजीब–सी हलचल हुई थी। उधर अपनी माँ का चेहरा याद करके उसे लग रहा था कि क्या इतने दिन भगवान के पास रहने से उसका चेहरा बदल गया है। वह विस्मित आँखों से महिला को देख रहा था कि तभी उस महिला ने उसे बड़े प्यार से गोदी में उठाकर गले से लगाकर पूछा–'ऐसे क्या देख रहा है छोटू! तू मुझे भूल गया क्या और कसकर सीने में भींच लिया तो उसने पूछ लिया–आप भगवान के घर क्यों चली गई थी वहाँ आपको मेरी याद नहीं...। उसकी बात पूरी नहीं हो पाई थी कि उस महिला ने उसे गोदी में उठाया और फिर से प्यार करते हुए बोली–''छोटू! मुझे तेरी बहुत याद आती थी, मगर मैं मजबूर थी मेरे बच्चे। मगर जब तूने भगवान से मुझे वापस भेजने की प्रार्थना की तभी भगवान ने मुझे आने दिया, कहते हुये महिला के आँसू बहने लगे।

थोड़ी देर वह उसे ऐसे ही सीने से चिपकाये रही, फिर बोली–''सोहन पपड़ी तुझे बहुत पसन्द हैं न। छोटू! ले, तू पहले मिठाई खा।'' कहकर उसने अपने कन्धे पर लटकते बेग को नीचे रखकर छोटू की मनपसन्द मिठाई का पैकेट उसे पकड़ा दिया। मिठाई खाते हुये उसने गौर किया कि उसकी माँ को जब उस दिन कन्धों पर उठाकर ले जाया गया था, तो माँ ने ऐसी ही साड़ी पहनी थी और माँ जब कभी भी उसे दादी के पास छोड़कर कहीं बाहर जाती थी, तो लौटने पर उसके लिए सोहन पपड़ी जरुर लेकर आती थी। सोचते हुए उसने मिठाई खाना छोड़कर पूछा–आप कह रही हो कि ''आपको मेरी याद आती थी, तो आप इतने दिन क्यों नहीं आई।'' कहकर उसने शिकायती नजरों से उसे देखा, तो महिला ने उससे कहा–''बेटा! तेरी प्रार्थना करने के पहले भगवान ने आज्ञा नहीं दी थी न, इसलिए कैसे आती, अब जब तूने प्रार्थना की, तो भगवान को आज्ञा देनी पड़ी, तब आना हुआ'' कहते हुए उसने छोटू के सिर पर हाथ रखा और उसके बाल सहलाती हुई बोली अरे! मिठाई क्यों नहीं खार हे हो तुम, मिठाई तो खाओ। महिला के प्यार भरे अनुरोध से वह उससे जुड़ता जा रहा था, इसलिये बोला–आप अब वापस तो नहीं चली जाओगी''–कहकर छोटू ने आशाभरी नजरों से उसे देखा, तो वह बोली–''अरे! भगवान ने मुझे मेरे छोटू के पास वापस भेजा है तो छोटू को छोड़कर में क्यों जाऊँगी।'' कहकर उसने उसे प्यार से गोद में लेकर सीने में भींच लिया था। काफी देर तक उसे अपने सीने में भींचे हुए उसने छोटू को कई बार चूमा तो उसे लगा कि यह उसकी माँ ही है।

इसके बाद रात के खाने का समय होते ही जब उस महिला ने उससे कहा मेरे छोटू को पनीर का पराठा अच्छा लगता है ना। चलो में रात के खाने में तेरे लिए वही बनाती हूँ, फिर उसने परांठा बनाकर उस पर काफी सारा मक्खन लगाकर उसका रोल बनाकर उसे दिया, तो उसे याद आने लगा कि माँ भी इसी तरह पराठे पर मक्खन लगाकर उसे देती थी और दोनों में दोस्ती गहराने लगी और उसने उसे पूरी तरह अपनी माँ मान लिया।

इसके एक साल बाद पापा एक दिन माँ को अस्पताल लेकर गये तीन–चार दिन बाद माँ उनके साथ लौटी, तो उनके हाथों में सफेद रॉबेदार तौलिये में लिपटी एक नन्हीं गुलाबी गुड़िया–जैसी लड़की थी। अपने कमरे में जाते ही मम्मी ने छोटू को बुलाया और बोली–''छोटू! देख, तू दादा बन गया। यह तेरी नन्हीं–सी छोटी बहिन है, तुझे इसका ख्याल रखना होगा। रखेगा न? कहते–कहते माँ ने प्यार से उसके सिर पर हाथ रखा तो उसके बालमन में एकदम बड़प्पन का भाव जाग गया। वह बोला–

''अम्मी मैं इसे अपने कमरे में रखूँगा, ठीक है न?'' अरे! अभी नहीं, अभी तो यह बहुत छोटी है बार–बार रोती है और सूसू और पॉटी कर देती है। जब यह

पैरों चलने लगे, तो तू इसे अपने कमरे में ही रखना, ठीक है। कहकर मम्मी मुस्करा दी थी।

उस दिन–'देख, तू दादा बन गया' कहकर माँ ने उसे जिस बड़प्पन का अहसास कराया, उससे अब जब वह स्कूल जाता तो उसे चिन्ता होने लगती कि माँ या तो दादी की देखभाल कर रही होगी या घर के कामों में लगी होगी, तो नन्हीं को कौन देख रहा होगा। जिस दिन से माँ ने कहा था–'तेरी नन्हीं–सी बहिन।' उसने उसी दिन से बहिन का नाम नन्हीं रख लिया था। उसे नन्हीं के हाथ–पैरों की गुलाबी–गुलाबी छोटी–छोटी उंगलियाँ बहुत अच्छी लगती थी, जिनसे वह उसके पास होने पर वह उसकी उंगली पकड़ने की कोशिश करती और उसके पहले पतले गुलाबी होंठों से उसे देखकर मुस्कराने लगती थी। धीरे–धीरे नन्हीं उसके मन–प्राण में एक नन्हीं गुलाबी परी–सी बस गई, जिसका वह दादा था। एक दो दफा किसी रिश्तेदार विशेषकर महिला ने कहा कि सौतेले भाई–बहनों में इतना प्यार कभी नहीं देखा, तो उसकी माँ ने विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर और कोई अन्य बात छेड़कर प्रसंग को समाप्त कर दिया, तो पापा प्रसंग बदलने के लिए कड़वी बात भी कहने से भी नहीं चूके थे, मगर सौतेला शब्द कभी–कभी उसके मन में संशयपूर्ण कौतूहल अवश्य पैदा कर देता था। पापा ने उसके कौतूहल को भाँपते हुये अपना स्थानान्तरण करा लिया, जहाँ कोई परिचित नहीं था और इस दूरस्थ स्थान पर रिश्तेदारों के पहुँचने की संभावना नगण्य हो गई थी।

नन्हीं के स्कूल जाने योग्य होते–होते उसमें नन्हीं के दादा के अभिभावकत्व भाव इतना पनप गया था कि यह सुबह उसे स्वयं स्कूल के ऑटो में बिठाता, स्कूल से लौटकर सबसे पहले नन्हीं को देखता और शाम को पार्क में खेलने जाता, तो माँ से कहता–''मम्मी मैं पार्क में क्रिकेट खेलने जा रहा हूँ, दो घंटे में आ जाऊँगा, तब तक दादी के साथ नन्हीं का ध्यान रखना, तो माँ के चेहरे पर असीम संतोष की सुखद चमक आ जाती थी।

सब कुछ अच्छा चल रहा था, वह बारहवीं कक्षा में आ गया था, तभी एक दिन पापा को ऑफिस में दिल का दौरा पड़ा और घर उनकी मृत देह ही लाई गई, तब रिश्तेदारों ने उसके पिता के विभाग में अनुकम्पा नियुक्ति के आधार पर उसे नौकरी कर लेने की सलाह दी, तो उसने माँ को पहली बार बिफरते हुये देखा था। वह बोली थीं–छोटू को इंजीनियर बनना है क्लर्क नहीं। नौकरी मैं करूँगी और माँ ने पिता के आफिस में नौकरी कर ली थी।

आठ साल बीत गये। उसने प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान से बी.टेक. की डिग्री हासिल की, फिर एम.बी.ए. किया और एक प्रतिष्ठित एम.एन.सी. में मैनेजर सेल्स की मोटी तनख्वाह की नौकरी पर लग गया। अब उसने माँ को नौकरी छोड़ने के लिए कहा, तो माँ ने कहा–''अब तुम तो दिन–भर आफिस में रहते हो और नन्हीं कॉलेज में, तो मैं दिन–भर घर में बैठी–बैठी करूँगी क्या और अभी नन्हीं की शादी करनी है छोटू!''

वह तो मैं करूँगा मम्मी, तुम क्यों चिन्ता करती हो। उसने माँ को आश्वस्त करते हुये कहा। उस दिन उसने माँ को गौर से देखा, इन पिछले कुछ वर्षों में मां का शरीर इतना दुर्बल कैसे हो गया? उसे चिन्ता हुई। उसने दो दिन बाद ही शनिवार को माँ को फैमिली डॉक्टर के पास ले जाने का विचार किया।

दूसरे दिन उसने अपने ऑफिस से फेमिली डॉक्टर को फोन किया, तो डाक्टर बोले–छोटू जी! तुम्हें इंजीनियर बनाने की लगन में तुम्हारी मम्मी ने जो हाड़–तोड़ मेहनत की, उसमें अपना ख्याल ही नहीं रखा. उनके स्तन की एक गाँठ जिसका ऑपरेशन दो साल पहले ही हो जाना चाहिये था, वह तुम्हारी माँ ने तुम्हारे पढ़ाई से विमुख हो जाने के डर से नहीं कराया, ना ही आवश्यक दवाइयाँ लीं। वह उसे सामान्य गाँठ मानकर बीच–बीच में जब कभी बेहद जरूरी हो जाता था, तो वह अपने माता–पिता से मिलने जाने का बहाना करके अपनी खास सहेली को तुम्हारी देखभाल के लिए छोड़कर मेरे क्लीनिक में दो–चार दिन के लिए भर्ती रह जाती थी। उनके माता–पिता तो काफी पहले गुजर गये थे और परिवार में कोई था ही नहीं। उनकी यह गाँठ ही स्तन का कैन्सर था, जो उस सामान्य चिकित्सा से ठीक नहीं हुआ और जो पहले सिर्फ एक स्थान पर केन्द्रित लगता था, धीरे–धीरे उनके शरीर में फैलने लगा और अब वह स्टेज आ गई है कि उसका ऑपरेशन भी नहीं हो सकता। मगर तुम्हारी मम्मी है बड़े जीवट वाली, उसके दर्द को भी चुपचाप सह लेती है। अब तो बस उनकी सेवा करो। किसी भी दिन यह गाँठ फूट जायेगी वह पल इनकी जिन्दगी का आखिरी दिन होगा।

उस दिन रात को माँ बेटे में प्यार भरी तकरार हुई। माँ ने उसे यह बात नन्हीं को नहीं बताने का वचन लिया और कहा– छोटू मेरी जिन्दगी कभी भी खत्म हो सकती है। हो सके तो मेरी एक चाहत पूरी कर देना। मैंने तेरे लिये अपनी एक सहेली की लड़की सुनन्दा को बहू बनाने के लिये चुना था। लड़की पढ़ी– लिखी है सुशील है। मैं तुझे किसी बन्धन में नहीं बांध रही हूँ, मगर हो सके, तो मेरा वचन निभा देना। बस इतना ही चाहती हूँ कहकर वह हाँफने लगी थी। मम्मी! तुम पहले ठीक हो जाओ, फिर और बातें देखूँगा, कहकर वह माँ से लिपट कर फूट–फूट कर रो पड़ा था।

इसके बाद लगभग दो सप्ताह बाद की ही बात थी। उस दिन माँ बातें करते–करते अचानक काफी बैचेन हो उठी। वह कुछ बता नहीं रही थी, मगर उसकी लगातार बढ़ती बैचेनी देखकर वह समझ गया और वह डॉक्टर को फोन लगाने के लिये उठा, तो माँ ने इशारे से उसे मना करते हुए अपने पास ही रहने का संकेत किया और थोड़ी देर में उसे और नन्हीं को अपने सीने से चिपटा लिया। दोनों के सिर पर हाथ फेरा और फिर उठने का प्रयास करते हुए एक ओर लुढ़क कर एकदम शान्त हो गई।

नन्हीं माँ से लिपट कर फूट फूट कर रोने लगी, तो उसने कहा–'नन्हीं! मां तो अब नहीं आयेगी, पर तू क्यों रो रही है, देख मैं हूँ न तेरा दादा' कहकर उसे सीने से लगा लिया था तो नन्ही सुबकते हुये उसकी गोद में नन्हीं चिड़िया–सी दुबक गई थी।

उसने माँ की बात निबाहते हुये सुनन्दा से विवाह कर लिया। माँ की पसंद तो वास्तव में चौबीस केरेट का सोना थी। वह एक बड़े संयुक्त परिवार से थी, इसलिये रिश्तों की अहमियत और उनकी मधुरता को समझती थी, सो उसने नन्हीं को उसकी ननद नहीं, अपनी छोटी बहिन की तरह स्वीकार कर लिया।

एम.कॉम. करने के बाद नन्हीं ने जब जॉब की बात की तो उसकी भाभी ने कहा–''नन्ही तुम्हें मैंने छोटी ननद नहीं, छोटी बहिन के रूप में देखा है। क्या तुम चाहती हो कि लोग कहे कि भाभी के कारण नन्ही को जॉब करना पड़ गया और फिर सोचो अगर हर लड़की पढ़ाई का उद्देश्य नौकरी करना ही मान कर चलेगी, तो इतनी नौकरियाँ आयेंगी कहाँ से। मेरा अपना विचार है कि लड़कियों को परिवार की आवश्यकता पर ही नौकरी करना चाहिये और हमारे परिवार को अभी तुम्हारे जॉब की जरुरत तो है नहीं। देखो, मैं भी कहाँ जॉब कर रही हूँ।

तुम्हारे भैया की सेलेरी हमारे परिवार की जरूरतों के लिये काफी है। इसके अलावा अगर तुम अभी जॉब करने लगोगी और शादी के बाद किन्ही भी कारणों से जॉब कन्टिन्यू नहीं कर पाई, तो तुम्हें उन परिस्थितियों के साथ खुद अपने को ही एडजस्ट करने में कठिनाई होगी। इसके अलावा एक बात और है, जो तुम शायद समझ नहीं पाओगी। कहकर भाभी चुप हो गई तो नन्हीं बोली–''आप कोई बात कहोगी और मेरी समझ में नहीं आयेगी, आज तक तो ऐसा हुआ नहीं, फिर आज आप को संदेह क्यों हों रहा है। तो

सुनो, देखो नन्हीं! वैसे तो आजकल ज्यादातर सुशिक्षित लड़कियाँ नौकरी करती ही हैं, मगर इसके कारण पारिवारिक रिश्ते दरक रहे हैं और दाम्पत्य जीवन में भी तनाव आ रहा है। देखो, जिस परिवार में पति और पत्नी दोनो नौकरी करते हों और उसी परिवार में दूसरे भाई के परिवार में केवल पति नौकरी करता होगा, तो केवल पति के नौकरी करने वाले परिवार की तुलना में उन दोनो नौकरी करने वाले का जीवनस्तर अपने आप ही समृद्ध होगा।

एक केवल आवश्यक्ता के अनुसार नाप–तौल कर खर्च करने वाला परिवार होगा, तो दूसरा शाम को दोनों के थके हुये होने के कारण या तो रात का खाना किसी होटल में खानेबाला या बाजार से मँगाकर खाने वाला और हर चीज बाजार से रेडीमेड ले आने वाला होगा। बात–बात में यह अन्तर एक ही परिवार के दो भाइयों में आपसी वैमनस्य का कारण बन जाता है। एक ही परिवार के बच्चे आपस में सगे होने के बावजूद बचपन के उस मधुर प्रेम से वंचित रह जाते हैं, जो बचपन बीत जाने पर जीवन की कमी भावुक पलों में जीवन की स्मरणीय पूंजी होती है। ऐसे दम्पत्ति पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों के प्रति भी कुछ समय की कमी, तो कुछ इसी जीवन स्तर की भिन्नता के कारण उदासीन हो जाते हैं। पति की तरह पत्नी भी ऑफिस के तनावों से जूझते रहने के कारण पति के ऑफिस या अन्य तनावों के क्षणों में उसकी कोई सहायता तो दूर एक सहृदय मित्र का संबल भी नहीं दे पाती है।

इस तरह पति और पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक बनकर दाम्पत्य की मधुर भावना से परिपूर्ण जिन्दगी बिताने के बजाय एक मेकनिकल जीवन जीते हुये जिन्दगी को एक भारी बोझ की तरह घसीटते हुए ढोने को मजबूर साथ–साथ उमर काटने जैसी कटु भावना भरा जीवन जीने को अभिशप्त रहते हैं। अब तुम्हारे जॉब की बात मैं तुम्हारे विवेक पर छोड़ती हूँ, चाहो तो अपनी क्वालीफिकेशन बढ़ाने के लिए कोई प्रोफेश्नल कोर्स ज्वाइन कर लो, मगर जॉब करने के बारे में मेरी बात पर सोचकर निर्णय करना–कहकर भाभी अपने कमरे में चली गई।

भाभी के समझाने के ढंग से बात नन्हीं की समझ में आ गई और जॉब करने की बात उसने मन से निकाल कर मुहल्ले पड़ोस के मध्यमवर्गीय परिवारों के जरूरतमंद बच्चों को और खासतौर पर लड़कियों को इंग्लिश और मेथ्स की नि:शुल्क कोचिंग और वेतनभोगी कर्मचारियों की स्त्रियों की छोटी–मोटी पारिवारिक समस्याओं में अपने जेबखर्च से मदद करने का काम करने लगी, तो उसे भाभी की बात व्यावहारिक रूप से समझ आने लगी और उसका हृदय भाभी के प्रति कृतज्ञता और एक अव्यक्त आनन्द से भर गया।

नन्ही के दादा के विवाह को तीन साल का समय बीत गये थे, जब उसकी एम.एन.सी. ने सारे भारत में फैली उसकी शाखाओं के सेल्स मैनेजर्स की एक कॉन्फ्रेन्स बैंगलोर में बुलाई थी। वहाँ तीन दिन के प्रवास में अनेक युवा मैनेजर्स से मिलने का अवसर मिला, इनमें सुवीर के व्यक्तित्व ने उसे ऐसा प्रभावित किया कि उसने उसे नन्हीं के जीवन साथी के रूप में चुन लिया। नन्हीं का विवाह उसके दादा ने बड़ी धूमधाम से किया।

विवाह के बाद नन्हीं जब पहली बार मायके आई, तो वह नव विवाहिता की तरह एकदम खुश नहीं लगी तो उसने सुनन्दा से पूछा– क्या नन्हीं इस विवाह से खुश नहीं है? तो उसकी पत्नी ने जबाब दिया था मुझे खुद भी ऐसा ही लग रहा है। मगर एकदम पूछना ठीक भी नहीं लग रहा है, सो मौका देखकर मैं दो–एक दिन में और बातचीत करूँगी, तो पता चलेगा। वैसे नन्हीं मुझसे कुछ छिपायेगी भी नहीं। कहकर सुनन्दा ने बात टाल तो दी, मगर उसके स्वर में चिन्ता को भाँपकर वह भी चिन्तित हो गया। परन्तु दूसरे दिन शाम को ही नन्हीं की सासू का फोन आया, तो बात पता चली। सासू जी बोली–वो भैया, तुम्हें मालूम ही है कि हमारा खानदान बड़ा रसूख वाला है, सो कहते हुए अच्छा तो नहीं लगता, मगर लड़के की शादी के बाद कुछ खास मेहमानों की विदाई के लिए तुम्हारे शहर की मशहूर कुछ साड़ियों और दो–चार जरूरी चीजों की लिस्ट मैंने तुम्हारी बहन को दी है। वो सामान जरा जल्दी भिजवा देना। मेहमान ज्यादा दिन तो रुके नहीं रहेंगे।

उसने इसे नन्हीं की सासू की पहली माँग मानकर जैसे–तैसे प्रबन्ध करके करीब दो लाख रुपये का सामान दो दिन में भिजवा दिया था।

इसके बाद नन्हीं को ससुराल गये दो महीने ही बीते थे कि रात को दस बजे के करीब उसका फोन आया। फोन पर वह उखड़ी–उखड़ी–सी लग रही थी, उसकी बातों से लग रहा था कि उसे जो कहना है, वह कह नहीं पा रही, कोई लिहाज कोई मर्यादा उसे रोक रही है, फिर उसने रूँधती आवाज में एकाएक फोन बन्द कर दिया। तो बात क्या है–सोचते–सोचते वह और पत्नी उस रात ठीक से सो नहीं पाये।

तीन दिन बाद ही नन्हीं अचानक अकेले मायके आई, तो उसकी पत्नी को किसी अनिष्ट की आशंका हुई। नन्हीं अपनी भाभी के गले लगकर फूट–फूटकर रोई, मगर बात पूछने पर वह बात नहीं बता रही थी। बस भैया–भाभी से लिपट–लिपटकर रोने लगती थी। उस दिन उसकी भाभी बड़ी मुश्किल से मान–मनोबल उसे थोड़ा बहुत खिला पाई थी। उसकी हालत देखकर रात को उसकी भाभी उसे अपने साथ लेकर सोई, तो वह भाभी से एक सहमी हुई बच्ची की तरह चिपटकर सो गई थी।

दो दिन ही बीते थे कि रात को नन्हीं की सासूजी का फोन आया। सामान्य कुशल क्षेम का बड़ा रूखा–सा उत्तर देकर वह बोली–भैया, मायके जाकर हमारी बहू तो तुम्हारी नन्हीं–सी बहन बन गई है, सो वह तो कुछ कह नहीं रही होगी, मगर भैया मैं तो साफ–साफ कहने में विश्वास करती हूँ। देखो, भैया मैं मानती हूँ कि तुम अपनी बहन को बहुत प्यार करते हो, मगर तुम आखिर को हमारी बहू के सौतेले भाई हो और तुम्हारे माँ–बाप दोनों ही मर चुके हैं।

हमें पता है कि तुम्हारे पास जो मकान पैतृक सम्पत्ति के रूप में है, उसकी कीमत एक करोड़ से भी कहीं अधिक ही है। हो सकता है कि आगे तुम्हारे नहीं, तो तुम्हारी सन्तान के विचारों में ही कोई बदलाव आ जाये, सो अभी अपनी बहिन के हिस्से के पचास लाख रुपये अपनी बहिन को देकर मकान का बँटवारे की कानूनी कार्यवाही पूरी कर लो।

नन्हीं की सासू के मुँह से सौतेला शब्द सुनते ही वह सन्न रह गया। आज तक किसी ने उसे इस तरह सौतेला भाई होने का ताना नहीं दिया था। अब उसे नन्हीं के गूँगे दुख का कारण समझ में आया और वह बेहद उद्विग्न हो गया, मगर किसी तरह थोड़ा सँभलकर बोला–देखिये, माताजी! आधा हिस्सा तो आप जब चाहे मैं नन्हीं के नाम रजिस्ट्री कराने को तैयार हूँ, मगर अभी तो नन्हीं की शादी को कुछ महीने ही हुए है। इतनी बड़ी रकम का इन्तजाम उसकी बात पूरी नहीं हो पाई कि नन्हीं की सासू बोली– भैया तुम्हारे लिये रुपये का इन्तजाम कर लेना ही ठीक रहेगा। अब उस मकान का आधा हिस्सा करके बेचोगे तो दिक्कतें तुम्हें और हमें दोनों को ही होगी। आगे तुम खुद समझदार हो। कोर्ट–कचहरी में भी कानून तुम्हारी बहन के ही पक्ष में रहेगा और पैसा हमें तो चाहिये नहीं, आगे कभी भी तुम्हारी बहन के ही काम आयेगा। मैं इसके लिए तुम्हें एक महीने का समय देती हूँ, ठीक है, कहकर उन्होंने फोन बन्द कर दिया।

तीन–चार दिन असमंजस की स्थिति में बीत गये। उसने अपने सभी स्रोत्रों से रुपये का इन्तजाम करके देख लिया, तो दस बारह लाख के लगभग ही इकट्ठे हो रहे थे। इन दिनों में तीनों ने शायद ही किसी वक्त पेट–भर खाना खाया था और नन्हीं तो हर समय भाई–भाभी की नजरों से

छिपने के प्रयास में कमरे में बन्द ही रहती थी। बड़ी मान–मनोबल से उसकी भाभी उसे कुछ ग्रास निगलवा पाती थी।

तीसरे दिन शाम को नन्हीं की सासू का फोन आया। सीधे बोली–बहिन को रोककर क्या हमारे खिलाफ दहेज माँगने का मुकदमा बनवा रहे हो भैया। पर हम कोई दहेज की माँग तो कर ही नहीं रहे हैं। हम तो तुम्हारी बहन के सुरक्षित भविष्य का ही इन्तजाम कर रहे हैं और उस मकान में तुम्हारी बहिन का कानूनी हक बनता है, यह तो तुम्हें भी मालूम होगा। वैसे भी मैं राज्य की रूलिंग पार्टी की सेक्रेट्री हूँ।

मैंने तुम्हें एक माह का समय दे दिया है। बहिन को सीधे से वापिस भेज दो। शादी के बाद मायके में किसी औरत की जिन्दगी नहीं कटी है और खास तौर पर जब कि एक मात्र अभिभावक सौतेला भाई हो। बहन से कहो सीधे यहाँ आकर यहाँ का काम–काज सँभाले। यहाँ विधानसभा चुनाव की घोषणा होते ही मेरी व्यस्तता बहुत बढ़ गई है। उधर मेरी पी.ए. छुट्टी पर चली गई है, तो यहां आकर कुछ मेरा हाथ तो बटावें। उनके फोन की भाषा सुनकर नन्हीं की भाभी तो उसे भेजने को तैयार ही नहीं थी, मगर उसने यह कहकर कि हमें इसका परिवार तोड़ना नहीं है, उसे भेज दिया।

इसके बाद दो सप्ताह बीत गये। नन्हीं से बस फोन पर बात हो जाती थी, मगर अब फिर वही उसके बात करते–करते रो पड़ने का सिलसिला शुरू हुआ, तो वह किसी अज्ञात आशंका से काँप गया। उसने अगले दिन ही नन्हीं के ससुराल जाने का फैसला कर लिया, मगर इसकी जरूरत ही नहीं पड़ी। उसी दिन शाम को घर पहुँचते ही उसकी पत्नी ने उसे किसी वकील का कानूनी नोटिस थमा दिया, जिसके अनुसार उसे दो दिन बाद ही स्थानीय पारिवारिक मामलों की अदालत में पेश होना था।

निश्चित दिन वह अपनी पत्नी और वकील के साथ कोर्ट पहुँचा तो नन्हीं ने उसे देखते ही माथे तक घूंघट खींच लिया और अपने वकील की आड़ में छिप–सी गई। यह सब देखकर यह तो किसी अज्ञात आशंका से काँप ही गया। उसने आगे बढ़कर उसका हाथ थामा बड़े प्यार से बोला 'नन्हीं कब आई तू' इतना कहना था कि नन्हीं तो वहीं जमीन पर ही बैठ गई। सिसकियों के बीच में बड़ी मुश्किल से बोल पाई–दादा! जिस नन्हीं को तुमने बचपन से गोद में खिला–खिला कर पाला था, वह नन्हीं तो उस समय ही मर गई, जब उसने मुकदमें के कागजों पर दस्तखत किये, मैं तो श्रीमती नन्दिता वर्मा हूँ, जो अपने दादा को जानती ही नहीं है, मगर आप इस नन्दिता वर्मा को पहचान गये। हाँ आपने ही तो अपनी लाड़ली नन्हीं को बड़े चाव से, बड़ी धूमधाम से इस दिन के लिए ही श्रीमती नन्दिता वर्मा बनाया था, कहते–कहते वह अचेत होने लगी तो उसकी पत्नी ने नन्हीं को सँभाल लिया।

मुकदमें की कार्यवाही प्रारम्भ हुई तो न्यायाधीश ने नन्हीं से पूछा–मिसेज नन्दिता वर्मा आपके प्रार्थना पत्र में लिखा है कि श्री नरेन्द्र शर्मन आपके सोतेले भाई हैं और आपके मां–बाप की मृत्यु हो चुकी है और आपके भाई के दिल में कभी भी खोट आ सकता है, इसलिये आप पैतृक सम्पत्ति के रूप में मकान के आधे हिस्से की कीमत पचास लाख रुपये चाहती हैं, इस पर आपके हस्ताक्षर हैं, आप यह स्वीकार करती हैं।

हस्ताक्षर मेरा ही है, यह मैं स्वीकार करती हूँ, मगर वह मेरे सौतेले भाई हैं, इससे में इन्कार करती हूँ। सौतेला भाई क्या होता है, मैं यह भी नहीं जानती, मैं तो बस इतना जानती हूँ कि वह मेरे दादा हैं। मैं उच्च शिक्षित हूँ, मगर कानूनी भाषा और उसके रहस्यपूर्ण विकट शब्दों का अर्थ नहीं समझ सकी, जिसके कारण आज अपने दादा और भाभी के सामने नन्हीं का शरीर एक सूखे पत्ते की तरह काँपने लगा और वह फिर अचेत होकर गिरने लगी, तो महिला पुलिस से पहले उसकी भाभी ने ही उसे सँभाल लिया। कहते–कहते अब न्यायाधीश उससे मुखातिब हुये और बोले मि. नरेन्द्र शर्मन! क्या आपके हिस्से में यह विवादित मकान है। इसके पहले कि जज साहब और कुछ कहते, वह काँपते स्वर में बोला–सर! जो भी मुकदमा दायर किया गया है, उसके फैक्ट्स सही है, आप जो भी फैसला करें, मुझे मंजूर है, मगर मेरी नन्हीं को कुछ नहीं हो, इसलिये पहले उसे सँभालने की इजाजत दे दीजिये, सर प्लीज! कहते हुये वह अचेत नन्हीं की तरफ लपका, जिसे अभी तक उसकी पत्नी सँभाले हुये थी।

मुकदमा अजीब तरह का था, मगर न्यायाधीश महोदय अनुभवी व्यक्ति थे। उन्होंने मुकदमे की सुनवाई एक सप्ताह के लिये स्थगित कर दी और नन्दिता वर्मा को सरकारी अस्पताल के काटेज वार्ड में सरकारी खर्च पर महिला चिकित्सक और महिला पुलिस अधिकारी की निगरानी में रखने का निर्देश दिया।

निश्चित दिन जब मुकदमे की सुनवाई आरम्भ हुई, तो उसके वकील ने इस पारिवारिक विवाद की भावुक स्थिति का हवाला देते हुए इसकी सुनवाई न्यायाधीश महोदय के चेम्बर में करने की प्रार्थना की। अपीलाण्ट के वकील की सहमति पर सुनवाई साहब के चेम्बर में शुरू हुई। जज साहब ने नन्दिता वर्मा को सम्बोधित किया, तो उसकी सिसकियाँ फूट निकली, वह सूखे पत्ते की तरह काँपने लगी, तो महिला चिकित्सक को कक्ष के अन्दर बुलाया गया।

महिला चिकित्सक ने जज साहब को बताया कि श्रीमती नन्दिता वर्मा अपने माई के प्रति बेहद भावुक है और वह उनके लिए सौतेला शब्द सुनते ही बेहद उद्विग्न हो जाती है, ऐसे में अगर इस समय उनसे इस मुकदमे के बारे में कोई बात की गई, तो उनका नर्वस ब्रेक डाउन हो सकता है। कम से कम एक सप्ताह तक तो उससे मुकदमे के बारे में बात नहीं की जा सकती।

अब न्यायाधीश रेस्पाण्डेण्ट की और मुखातिब हुए, तो वह बोला–सर! में कानून नहीं जानता, मैं तो मकान का आधा हिस्सा अभी देने को तैयार हूँ, मगर मकान की बजाय पैसों का इन्तजाम करने के लिए मोहलत चाहिये। मैं अपनी नन्हीं को दुःखी नहीं देख सकता, आपसे इतनी रियायत चाहता हूँ, सर! कानूनी बात वकील साहब करेंगे।

न्यायाधीश का संकेत पाकर उसके वकील बोले हुजूरे आला! मुझे मुआफ करें, लेकिन दरअसल कानून बनाये तो जाते हैं लोगो की भलाई के लिए, मगर बनानेवालों की नीयत साफ नहीं होती, इसलिये उसमें राजनीति की गन्दी मिलावट हो जाती है और कानून में से इंसानियत का जज्बा बिलकुल गायब हो जाता है। इसी तरह पैतृक सम्पत्ति में विवाहिता पुत्री के अधिकार का कानून बनाया तो इसलिये गया था कि कभी आवश्यकता पड़ने पर विवाहिता पुत्री पैतृक सम्पत्ति से कुछ सहायता प्राप्त कर सके, मगर कानून में से इंसानियत का जज्बा खत्म हो जाने से यह भाई–बहिन के रिश्ते को तोड़नेवाला निर्दयी कानून बन गया है, जिसमें श्रीमती नन्दिता वर्मा जैसी भावुक लड़कियों को सुसराल वालों की इच्छा के अनुसार मुकदमें के कागजात पर दस्तखत करने होते हैं, जबकि उनकी बिल्कुल इच्छा नहीं होती, ना ही कोई जरूरत होती है, वह तो उनकी सुसराल वालों की हवस होती है। मेरे मुअल्लिज दोस्त और इस मुकदमें की अपीलाण्ट के वकील साहब अपना खुद का मकान बनने से पहले 10–12 वर्ष इस मुकदमें में विवादित मकान में किरायेदार रहे हैं, उन्होंने अपीलाण्ट श्रीमती नन्दिता वर्मा उर्फ नन्हीं को पैदा होने से किशोर होने तक पलते बढ़ते देखा है और वह इस सोतेले भाई के अपनी नन्हीं से प्यार से पूरी तरह वाकिफ हैं। इनकी छोटी पुत्री अपीलाण्ट की बचपन की सहेली रही है। वह इस मुकदमे के हालात पर ज्यादा रोशनी

डाल सकते हैं। मुझे ताज्जुब और अफसोस है कि सब कुछ जानते हुए उन्होंने यह मुकदमा दायर किया है।

वकील साहब का वक्तव्य सुनकर विपक्षी वकील बोले– ''सर! मैं पेशे से वकील हूँ, मुकदमों की पैरवी करना मेरा पेशा ही नहीं फर्ज भी है. मेरे काबिल दोस्त मुझे इस मुकदमें में वकील से गवाह बनाना चाहते हैं। इट इज नाट फेयर।''

जज साहब ने बीच में ही दखल देकर उनको रोक दिया और बोले– यह तो वह कानूनन भी कर सकते है, मगर आप एक सीनियर वकील है। आपकी किसी जानकारी से अगर पारिवारिक रिश्तों के प्रति बेहद भावुक भाई–बहन का मुकदमा बिना उनके जज्बातों को ठेस पहुँचाये सुलझ सकता है, तो आपकी सहायता और सामाजिक सेवा के लिए अदालत आपकी शुक्रगुजार होगी वकील साहब!

जज साहब के कहने पर अपीलाण्ट के वकील ने रेस्पोडेण्ट के वकील के द्वारा कहे गये पारिवारिक सम्बन्धों के तथ्य को स्वीकारते हुए कहा कि इतना प्यार तो आजकल सगे भाई–बहन में भी नहीं होता।

वकील साहब के मुँह से सारी बात सुनकर न्यायाधीश महोदय ने महिला चिकित्सक की सलाह पर श्रीमती नन्दिता वर्मा को एक सप्ताह उनकी तथा महिला पुलिस अधिकारी के संरक्षण में सरकारी अस्पताल के काटेज वार्ड में सरकारी खर्चे पर रखने का आदेश दिया। साथ ही उसके भैया–भाभी को तथा नन्हीं की सासू जी को दोनों पक्षों के वकील व पुलिस अधिकारी और डॉक्टर की उपस्थिति में शाम को दो घंटे अलग–अलग समय पर मुलाकात की आज्ञा इस शर्त पर दी कि उससे मुकदमे के सम्बन्ध में कोई बात नहीं की जायेगी।

निर्णय होने के दूसरे दिन सुबह सुबह ही नन्हीं की सास दस–बारह सड़कछाप उद्दण्ड–सी महिलाओं को लेकर उसके घर के बाहर आ धमकी और अनर्गल आरोप लगाकर एक घंटा खूब चीखती–चिल्लाती रही, फिर थक–हारकर महिला चिकित्सक और न्यायाधीश महोदय के खिलाफ क्रमशः कार्यवाही और आन्दोलन की धमकी देकर चली गई।

दूसरे दिन ही नन्हीं की सासू ने अस्पताल के अन्दर ही महिला चिकित्सक पर रिश्वत लेकर नन्हीं के दादा के पक्ष में मिलकर उसे बीमारी का झूठा प्रमाण–पत्र देकर और नन्हीं को मानसिक रूप से रूग्ण बताकर अस्पताल के कॉटेज वार्ड में अकेली रखवाकर उसके कानूनी पक्ष को कमजोर करने का आरोप लगाते हुये साथ लाई हुई पन्द्रह–बीस उदण्ड–सी महिलाओं को लेकर जोरदार नारे बाजी की।

इसके बाद वह उन्हीं के साथ नन्हीं के बार्ड की तरफ बढ़ी और महिला पुलिस अधिकारी द्वारा मुलाकात के लिए न्यायालय की शर्तों की याद दिलाते हुए मुलाकात के समय ही मुलाकात करने को कहने पर इसी समय मुलाकात करने की हठ करते हुए वह उनसे धक्का–मुक्की कर बैठी और न्यायाधीश महोदय पर भी किसी दवाब में आकर निर्णय देने के दो–चार नारे लगा डाले। अपनी राजनैतिक स्थिति को देखते हुए किये गये यह सारे काम उनके जीवन की भारी भूल साबित हुई। महिला चिकित्सक की ख्याति सारे शहर में एक अत्यन्त सेवाभावी, ईमानदार और मृदु व्यवहार वाली चिकित्सक के रूप में थी। उनके व्यावसायिक साथी उनके प्रति बेहद सम्मान रखते थे, इसलिए उनके समर्थकों ने श्रीमती सासू जी द्वारा उनके विरुद्ध किये गये अपमानजनक कृत्य के विरोध में उनके राज्य की सत्तारुढ़ दल की सचिव होने के नाते उनकी ही पुत्रवधू श्रीमती नन्दिता के द्वारा अदालत में दिये गये बयान के आधार पर उससे पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे के लिए दबाव देकर हस्ताक्षर कराने के साथ उनकी मर्जी के मुताबिक बयान देने, बयानों से मुकरने या समझौता करने की स्थिति में उन्हें गलत बयानी के जुर्म में फँसाने और समझौता केवल उनकी मध्यस्थता से ही करने के लिए बाध्य करने के आरोपमय जिन्दा सुबूतों के प्रेस में और खास तौर पर टी.वी. के स्थानीय चैनलों पर नियमित रूप से इस तरह प्रसारित कराया कि तीन दिन में ही उनके राज्य में विधान सभा का चुनाव सन्निकट होने के कारण राजनैतिक दल की सेक्रेट्री पद से बर्खास्त किये जाने तथा और राजनैतिक दल की प्राथमिक सदस्यता से निलम्बन का आदेश टीवी पर सुर्खियों में प्रसारित होने लगे। इधर महिला पुलिस अधिकारी से ड्यूटी पर धक्का–मुक्की करने और माननीय न्यायाधीश के विरुद्ध अर्नगल बयानों पर जब उनके विरुद्ध मुकदमें दर्ज हो गये और उन्हें अचानक ही गिरफ्तार कर लिया गया, तो कोई पदाधिकारी तो क्या कार्यकर्ता तक उनकी जमानत के लिए तो दूर, उनसे मिलने तक नहीं आया, तो वह बेहद निराश हो उठी थीं, क्योंकि उनके पति इस समय अपने व्यावसायिक दौरे पर दो सप्ताह से विदेश गये हुए थे और अभी उन्हें दो सप्ताह और विदेश में ही रहना था और पुत्र भी एक सप्ताह पहले ही कम्पनी की ओर से चार सप्ताह के कियी विशेष प्रशिक्षण के लिए फ्रांस जा चुका था और वैसे भी दोनों ही उसकी राजनीति से बेहद चिढ़ते थे। हालात देखते हुए नन्हीं के दादा ही न्यायालय से उनकी जमानत करवा कर पुलिस अधिकारी के पास पहुँचे। जमानत के दस्तावेज देखकर पुलिस अधिकारी ने उन्हें बुलाया और कहा– ये मिस्टर शर्मनआपकी जमानत लेकर आये है। इसलिये फिलहाल आपको रिहा किया जाता है, तो पहली बार उसे देखकर उनकी आँखे झुक गई थी। उसने उनसे घर चलने के लिए कहा तो वह बोली–नहीं, अभी मुकदमे की सुनबाई की तारीख तक मुझे किसी अनजान से गेस्ट हाउस में रहने दो, नहीं तो मीडियावाले, खास तौर से टी.वी. वाले तरह–तरह के सवालो सें परेशान करेंगे। हाँ अगर तुम करा सको तो एक वार नन्दिता से बात करा देना।

दो दिन बाद राखी का त्यौहार था। उसने एक दिन के लिए बहिन को घर ले जाने की अनुमति न्यायालय से ले ली थी। उसने अनुनय–विनय करके नन्हीं की सासू को ही घर चलने के लिये मना लिया था।

दूसरे दिन घर पर सासूजी की उपस्थिति की वजह से नन्हीं की आक्रोशपूर्ण उदास चुप्पी के कारण राखी के त्यौहार की रस्में ही पूरी हो पाई। नन्हीं अपने दादा को राखी बाँधकर चुपचाप कमरे की ओर जाने लगी, तो बड़े अप्रत्याशित ढंग से नन्हीं की सासूजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बड़े ही स्नेहसिक्त स्वर में बोली–बहू अदालत की तारीख के बाद मैं अपने घर चली जाऊँगी, मैं चाहती हूँ तुम भी मेरे साथ चलो।

नहीं, सासू माँ! मेरी मन:स्थिति अभी ठीक नहीं है, मैं आपके साथ नहीं जा पाऊँगी। मेरे दादा ने मुझे चौबीस साल पलकों की छाँव में पाला, तो कई साल से मेरी भाभी मेरी माँ बनकर मुझे पाल रही थी। ऐसे भैया–भाभी के लिए जीवन में पहली बार सौतेले भाई का ताना एक सार्वजनिक गाली–जैसे शब्द के रूप में भरी अदालत में मेरे द्वारा ही ताईद किये गये दस्तावेजों की वजह से सुना है, उसे मैं कैसे सहन करूँ, मैं समझ नहीं पा रही। मैं बहुत दुखी ही नहीं, खुद अपने आपसे बेहद शर्मिन्दा महसूस कर रही हूँ। राखी की रस्म हो गई। मैं बस कपड़े बदलकर अभी अस्पताल वापस चली जाऊँगी। मैं अपने दादा– भाभी को अपनी शक्ल दिखाने का साहस नहीं कर पा रही हूँ। कहकर वह चलने लगी, तो नन्हीं के दादा ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला–मेरी नन्हीं कब इतनी बड़ी हो गई और इतनी बड़ी–बड़ी बातें बोलना सीख गई, मुझे मालूम ही नहीं हो पाया। पर आज तो भाई–बहनों का त्योहार राखी है ना। इसलिए तुझसे झगड़ा नहीं करूँगा, पर देख तूने मुझे राखी बाँधी है, मगर मैने तुझे राखी बाँधने का नेग तो दिया ही

नहीं। तू तो कुछ कहेगी नहीं, मगर मैं तो तेरा दादा हूँ, ले मेरी तरफ से राखी का नेग। कहकर उसने कुर्ते की जेब से गोल किये गये तीन चार कागज निकाल कर नन्हीं की तरफ बढ़ाये। नन्हीं तो उन्हें आँख फाड़कर देखती रही। उसके मुँह से बोल ही नहीं फूटे, तो वह ही बोला– नन्हीं, मैंने मकान की रजिस्ट्री तेरे नाम करा दी है। इसके अलावा माँ के बैंक अकाउण्ट में भी कुछ पैसे थे, जो तेरे नाम करा दिये हैं, यह छोटी–सी भेंट स्वीकार कर ले।

नन्हीं तो कुछ बोल ही नहीं सकी, उसकी सिसकिया फूट निकली। उसकी माभी उसे सँभालने के लिए आगे बढ़ी, मगर उसके पहले ही नन्हीं की सासू बीच में आ गई। नन्हीं को गले लगाते हुये बोली–बहू! आज भाई–बहनों के सम्बन्ध का पावन पर्व राखी का त्यौहार है। अब अपने भैया–भाभी को और दु:खी; मुझे और शर्मिंदा मत होने दो। मैं तुमसे माफी माँगते हुए तेरे इस भाई के लिए आखिरी बार सौतेला शब्द इस्तेमाल करते हुये कहती हूँ कि अगर सौतेला भाई ऐसा होता है, तो हर घर–परिवार में ऐसा भाई होना ही चाहिये, कहते हुये वह रजिस्ट्री के कागज को दीपक की ज्योति से जलाने लगी, तो वह बोला–अरे, माँ जी! यह क्या कर रही हैं आप?

''तेरे जैसे माई पर यह आधा तो क्या कई मकान न्यौछावर मेरे बेटे''–मैं ही लालच में अंधी हो गई थी। दरअसल मुझे इस विधान सभा चुनाव में टिकट हासिल करने के लिए अपनी राजनैतिक पार्टी के इलेक्शन फण्ड में एक बड़ी रकम देना है और मेरे घर–परिवार में मेरी राजनीति को कोई पसन्द नहीं करता, इसलिये मुझे पता था कि एक बड़ी रकम पार्टी फण्ड में देने के नाम पर पैसे देना तो दूर, पैसों का प्रबन्ध करने में कोई मेरी सहायता भी करने को तैयार नहीं होगा। मैं अपने स्तर पर ही उनके आने के पहले यह काम करवा कर पार्टी फण्ड में पैसा देकर टिकट का इन्तजाम कर लेना चाहती थी। सबसे बड़ी बात यह है कि ज्यादा समय भी नहीं था, मगर परिणाम जो निकला, उससे मेरी आँखें खुल गई। अब इतना सब कुछ हो जाने के बाद मेरा परिवार तो मुझे कैसे माफ करेगा और माफ करेगा भी या नहीं, मुझे नहीं मालूम, मगर कम–से–कम तुम तो मुझे माफ कर दो मेरे बेटे। मैंने सबसे ज्यादा दुख तुम्हें और नन्हीं को पहुँचाया है। कहते हुए सासु माँ ने अपने हाथ उसके सामने जोड़ दिये, तो नन्हीं के दादा ने उनके दोनों हाथ पकड़कर कहा– माँ! आप यह क्या कर रही हैं, आप तो हमसे बड़ी हैं और आप तो माँ है, आप ऐसा करके हमें शर्मिन्दा नहीं करें।

सासू माँ ने बड़ी नरमी से अपने हाथ मुक्त कराये और थाली में से मिठाई उठाई और नन्हीं और उसके दादा को खिलाते हुए बोली–राखी का पावन पर्व भाई–बहन को मुबारक हो, कह कर उन्होंने नन्हीं की भाभी की तरफ हाथ बढ़ाया और बोली–तुम दोनों भी मुझे माफ कर दो मेरी बेटियों, तो नन्हीं की भाभी और उनके संकेत पर नन्हीं दोनों उनके पैरों पर झुकने लगे, तो उन्होंने दोनो को अपने गले से लगा लिया।

राखी के पावन पर्व पर इस अद्‌भुत और अविस्मरणीय दृश्य पर प्रकृति की शुभकामना के रुप में बाहर रिमझिम फुहार पड़ने लगी थी।

उपर्युक्त कहानी 'सौतेला भाई' मेरी मौलिक रचना है।

श्याम सुन्दर तिवारी
खण्डवा
मो.–9340517010

01 गीत

लालच दे कर नए घरों का
छीन लिये असली घर

खरहे छिपे सहमकर बिल में
चिंताकुल है चीतल
बुद्धिमान होकर भी हाथी
भटक रहा ज्यों पागल
शायद अबकी सावन में
छत होगा नीला अम्बर।।

योजनाएँ हैं उनके हाथों
अपने मन को सहना
कीमत के गोमुख से निकली
महँगाई सी बहना
यही हमारी सगी सहोदर
नित होता जिसका डर

चाहे जितनी बारिश आए
रहता फिर भी सूखा
खाने को मिलता है टिक्कड़
वह भी बिल्कुल रुखा
उनकी दालें घी गुड़ वाली
ऊपर से बाटी तर

2. गीत

आग यहाँ है आग वहाँ है
खोजे कोई नीर कहाँ है

चौपायों सा ये जीवन है
सत्य भाव के पाँव नहीं हैं
जिन गांवों में रहते आए
प्रेम पगे वे गाँव नहीं हैं
मुनिया ने दादी से पूछा
मेरी वाली खीर कहाँ है

बहुत चल चुके रात रतजगे
झूम रहे सपनों के संदल
कहाँ कृष्ण हैं कहाँ सुदामा
कहाँ पोटली वाले तन्दुल
धड़क रहा उर देह भवन में
राधा वाली पीर कहाँ है

साँझ हो चली धीरे–धीरे
तम चुपके से पैर जमाता
कोई भाट इकतारा लेकर
दर्द भरा फिर गीत सुनाता
पिंजरा रिक्त टंगा टंगनी पर
संगत देने कीर कहाँ है।

कविता

राजकुमार कुम्भज
जवाहरमार्ग, इन्दौर,
मो–7312543380.

शांत नदी

शांत नदी के शांत जल में
तैर रही हैं मछलियाँ और चाँदनी
किंतु फिर–फिर एक कौंध, एक बर्बरता
उठा रही है सिर अपना
ध्वस्त करते हुए असहमतियाँ तमाम
ये कौन हो जो विरुद्ध–लोकतंत्र
सिर्फ अपनी ही बस्ती
सिर्फ अपनी ही आवाज
सिर्फ अपनी ही निक्कर की
कीमत के चक्कर में
दिन–रात मशगूल फिर–फिर
माँजता है, भाँजता है तीर–तलवार
फिर–फिर शुभकामनाएँ देते हुए
कहता है कि झुको
रीढ़हीन होकर झुको और हमेशा के लिए
झुकना विनम्रता है, सिखाता है वह
मगर सीखता नहीं है, खुद कभी भी नहीं
जरा भी लौटता नहीं है विनम्रता की ओर
रह–रहकर होता है विस्मय मुझे
करूँ क्या, करूँ कैसे विश्वास किस पर
कि बचे विश्वास, बढ़े विश्वास
मेरे जैसे, मेरे अपने पर थोड़ा भी
मेरा थोड़ा विश्वास?

रेखाचित्र

महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

हतभाग्य भारतवर्ष पर विदेशी शत्रुओं के आक्रमण और आंतरिक राज्य–विप्लवों के कारण यद्यपि हमारी देववाणी संस्कृत के सहस्रशः अमूल्य ग्रंथ सर्वदा के लिए लोप हो गए, तथापि अनंत ग्रंथ–रत्न अब तक छिपे पड़े हैं। इसका पता लगाना दुर्घट है कि इन ग्रंथों में कितना ज्ञान–भंडार भरा पड़ा है। हमारे शासक राजपुरुषों की विद्या की अभिरुचि प्रशंसनीय है। वे अनेक देशों की भाषाओं को केवल ज्ञान–संपादन की कामना ही से सीखते हैं और उन भाषाओं में जो ग्रंथ अथवा जो विषय उपादेय होते हैं, उनका अनुवाद भी अंग्रेजी में करके उस भाषा के जानने वालों को लाभ पहुँचाते हैं। जब से सर विलियम जोंस नामक पंडित ने कालिदास के 'शाकुंतलम्' नाटक का अनुवाद अंग्रेजी में किया, तब पाश्चात्य के विद्वानों को विदित हो गया कि संस्कृत भाषा में अनेक अमूल्य विद्यमान हैं। तब से वे लोग संस्कृत पढ़ने लगे और उत्तमोत्तम ग्रंथ को खोजकर विलायत भी भेजने लगे। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों की उत्तमता की प्रशंसा जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड के प्रसिद्ध–प्रसिद्ध विद्वानों के लेखों से अवगत करके गवर्नमेंट अब अपने संस्कृतज्ञ अधिकारियों से दुष्प्राप्य ग्रंथों का पता लगवाकर उनकी रक्षा करती है और क्रमशः उनके छपवाने का भी प्रबंध करती है। गवर्नमेंट की इस कृपा के हम लोग हृदय से कृतज्ञ हैं। हमारे ही पूर्वजों के बनाए और हमारे ही यहाँ सैकड़ों वर्षों से पुराने बस्तों में बंधे पड़े ग्रंथों को कीड़ों का भक्ष्य होने से बचाने का सारा पुण्य प्रायः विदेशी विद्वानों को ही प्राप्त है। यह कृतघ्नता बहुत काल तक हमलोगों के पाले बँधी चली आई, परंतु संतोष की बात है कि विदेशियों की देखा–देखी इस देश के भी कोई–कोई विद्वान् कुछ दिनों से हमारे बहते हुए आँसुओं को पोंछने की इच्छा से इस ओर उद्यत हुए हैं और प्राचीन पुस्तकों का पता लगाकर उनको नष्ट होने से बचाने का यत्न कर रहे हैं। इन विद्वानों में महामहोपाध्याय पं. दुर्गाप्रसाद का पहला नंबर है।

राजपूताने में अलवर राज्य के अंतर्गत हमजापुर नामक एक गाँव है। वहीं पं. दुर्गाप्रसाद के पूर्वज रहते थे। पं. चौरसिया गौड़ ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम ब्रजलाल था। पं. ब्रजलाल ज्योतिष विद्या में बड़े प्रवीण थे। देश–पर्यटन करते–करते वह पंजाब पहुँचे और वहाँ काँगड़ा जिले की प्रसिद्ध देवी के स्थान में बहुत काल तक पूजन–पाठ करते रहे। उस समय कश्मीर के महाराज गुलाबसिंह लाहौर में कारागार में पड़े हुए अपने दिन काट रहे थे। पं. ब्रजलाल ने उनसे यह भविष्यवाणी कही कि आप अपनी इस दुरवस्था पर अधिक खेद न कीजिए, आप शीघ्र ही कश्मीर के राज्यासन पर विराजमान होंगे। पंडितजी की उक्ति सत्य निकली और महाराज गुलाबसिंह को फिर राज्य प्राप्त हुआ। जब यह कश्मीर पहुँचे, तब उन्होंने पंडितजी को अपना मुख्य ज्योतिषी नियत किया। इस प्रकार राजज्योतिषी नियत करके महाराज गुलाबसिंह ने उनका बड़ा सम्मान किया। तब से पं. ब्रजलाल यहीं सकुटुंब रहने लगे।

1846 ई. में जिस समय उनके पिता जम्बू में थे, पं. दुर्गाप्रसाद का जन्म हुआ। दुर्गाप्रसाद जब बालक ही थे, तभी से उनमें बुद्धिमता के चिह्न दिखलाई देने लगे थे। 1850 ई0 में, महाराज गुलाब सिंह के मरने पर उनके पुत्र महाराज रणवीर सिंह को कश्मीर का राज्य हुआ। उनके पुत्र महाराज प्रतापसिंह अर्थात् कश्मीर के तत्कालीन प्राप्त राजा और पं. दुर्गाप्रसाद–दोनों समान वय के थे। महाराज प्रतापसिंह बाल्यकाल में सोमनाथ नामक विद्वान् से विद्याभ्यास करते थे। उनको पं. सोमनाथ से अकेले पढ़ते हुए देख महाराज रणवीर सिंह ने यह सोचा कि यदि दुर्गाप्रसाद और प्रतापसिंह साथ ही अभ्यास करें तो अच्छा हो। अतएव उन्होंने पं. दुर्गाप्रसाद को महाराज प्रतापसिंह का सहपाठी बनाया। व्यवस्था से महाराज प्रतापसिंह का अभ्यास पहले की अपेक्षा अधिक उत्तम रीति पर होने लगा। इस प्रकार राजपुत्र के सहपाठी बनाए जाने से यह सिद्ध है कि पं. दुर्गाप्रसाद बाल्यावस्था से ही बुद्धिमान और सुशील थे। यदि उनमें ये गुण न होते तो उनको कश्मीर के महाराज के प्यारे पुत्र प्रतापसिंह का साहचर्य कदापि न प्राप्त होता।

कुछ वयस्क होने पर दुर्गाप्रसाद ने पं. देवकृष्ण से सांगोपांग ज्योतिष शास्त्र पढ़ा। यह महाशय ज्योतिष विद्या में बहुत प्रवीण थे। महाराज रणवीरसिंह ने इन्हें बनारस से बुलाया था। ज्योतिष शास्त्र में पारदर्शी हो जाने पर प्रसिद्ध कश्मीरी पं. साहबराम से उन्होंने साहित्य–शास्त्र पढ़ा। यह शास्त्र उनको और शास्त्रों की अपेक्षा अधिक रुचिकर और आनंदजनक जान पड़ा। अतएव इसका अवलोकन वह बहुत काल तक करते रहे।

1876 ई. में पं. दुर्गाप्रसाद के पिता पं. ब्रजलालजी का शरीरपात हुआ। यह कहना कि विपत्ति अकेली नहीं आती, बहुत ठीक जान पड़ता है। पिता का स्वर्गवास होने के अनंतर कुछ ही दिनों में उनकी पत्नी का भी देहांत हो गया। यही नहीं, पत्नी की मृत्यु के अनंतर उनके छोटे भाई ने भी स्वर्ग का मार्ग लिया।

इस प्रकार विपत्ति के ऊपर विपत्ति पड़ने पर उनका चित्त अत्यंत उद्विग्न हो उठा और उन्होंने जंबू छोड़ अपनी जन्मभूमि को जाने का निश्चय किया। इस निश्चय की कार्य–रूप में परिणत करने के पहले वह हिमालय के दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए गए और दूर–दूर तक घूमकर जंबू लौट आए। इस प्रकार कुछ दिनों तक बाहर पर्यटन करने से उनके चित्त को थोड़ी–बहुत शांति मिली; परंतु जंबू में अधिक समय तक रहने में असमर्थ होकर उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग में अपने पिता के चिरपरिचित स्थल काँगड़ा होते हुए यह अपने घर हमजापुर आए। कुछ काल व्यतीत होने पर अपने इष्ट मित्रों और कुटुंबियों के इच्छानुसार हमजापुर में उन्होंने अपना दूसरा ब्याह किया और सुख से रहने लगे। पं. दुर्गाप्रसाद जिस समय अपने गाँव हमजापुर में थे, उस समय उन्होंने जयपुर के महाराज रामसिंह की गुण–ग्राहकता इत्यादि संबंधिनी बहुत प्रशंसा सुनी। अतएव उनसे मिलने की इच्छा से वह जयपुर गए और महाराज दामसिंह के आश्रित पं. सरयूप्रसाद के यहाँ ठहरे। शीघ्र ही दोनों का पारस्परिक सौहार्द हो गया। दोनों विद्वान, दोनों रसिक। फिर क्यों न सौहार्द हो। उसी समय अर्थात् 1877 ई. में महाराज रामसिंह उस बड़े दरबार में निमंत्रित होकर देहली गए, जो लॉर्ड लिटन के शासन काल में हुआ था। उनके साथ पं. सरयूप्रसाद भी थे। सरयूप्रसाद पं. दुर्गाप्रसाद को भी अपने साथ ले गए थे। देहली से जब महाराज रामसिंह लौटे, तब मार्ग में दुर्गाप्रसाद से उनका परिचय हुआ। परिचय का फल यह हुआ कि महाराज को यह तत्क्षण विदित हो गया कि पं. दुर्गाप्रसाद बड़े विद्वान्, बड़े रसिक और बड़े सुशील हैं। अतएव उन्होंने पंडितजी को अपना आश्रित बना लिया।

इस प्रकार राजाश्रय मिलने पर पं. दुर्गाप्रसाद जयपुर में रहने लगे और अपने पांडित्य से सबके मनों को मुग्ध करने लगे। उनको देशाटन से अधिक प्रीति थी। इसलिए महाराज रामसिंह की आज्ञा से एक बार वह फिर हिमालय की ओर गए। वहाँ गंगाद्वार, कुब्जकाम्र, हृषिकेश, देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, केदारनाथ और बदरीनाथ आदि स्थानों की यात्रा करके कुशलपूर्वक वह जयपुर लौट आए।

पं. दुर्गाप्रसाद को विद्या में अतिशय अभिरुचि थी। ग्रंथावलोकान से उनको इतनी प्रीति थी कि वह अपना एक क्षण भी व्यर्थ न जाने देते थे। साहित्य तो उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय था। वह प्राचीन पुस्तकों की खोज में सदा लगे रहते थे और ढूँढ़–ढूँढ़कर बड़े प्रयत्न से उनका संचय करते थे। जिस समय वह दुर्लभ प्राचीन ग्रंथों की खोज में लगे थे, उस समय बंबई के एलफिस्टन कॉलेज के प्रधान संस्कृताध्यापक डॉ. पिटर्सन जयपुर गए। उनको गवर्नमेंट ने प्राचीन संस्कृत–ग्रंथों की खोज लगाने के लिए नियत

किया था। इसी निमित्त वह जयपुर गए थे। वह वहाँ जिस पुस्तकालय में ग्रंथों की खोज में पुस्तकावलोकन कर रहे थे, उसी में दुर्गाप्रसाद भी उसी काम में मग्न थे। वहीं डॉ. पिटर्सन की उनसे भेंट हुई। दोनों ही समव्यसनी और विद्वान् थे। अतएव शीघ्र ही परस्पर स्नेह हो गया। क्रमशः उनकी मैत्री बढ़ती गई। यहाँ तक कि दोनों विद्वान् ग्रंथों का पता लगाने के लिए साथ ही देश–पर्यटन को निकले और कश्मीर, पंजाब, बंगाल, राजपूताना, गुजरात, मध्यप्रांत और तैलंग इत्यादि देशों में बहुत काल तक भ्रमण करके नाना प्रकार के काव्य, नाटक, भाण, चंपू, प्रहसन, अलंकार–शास्त्र इत्यादि ग्रंथ उन्होंने प्राप्त किए। इसके अतिरिक्त कश्मीर से वह स्वयं अनेक अलभ्य ग्रंथ अपने साथ पहले ही ले आए थे। जब वह बदरिकाश्रम की ओर देशाटन को गए थे, तब भी वहाँ से कितने ही हस्तलिखित अनुपम ग्रंथ खोज लाए थे। जिन प्राचीन ग्रंथों का पता पंडितों ने लगाया, उनमें कितने ही ग्रंथ 1000 वर्ष के से भी अधिक पुराने हैं, सात–आठ सौ वर्ष पुराने ग्रंथ सैकड़ों ही हैं।

1885 ई. में प्राचीन पुस्तकों के प्रकाशन के संबंध में पं. दुर्गाप्रसाद बंबई गए। वहाँ डॉ. पिटर्सन के स्थान पर उनसे और पं. काशिनाथ पांडुरंग परब से भेंट हुई। अनेक विषयों पर वार्तालाप होते–होते पुराने ग्रंथों के प्रकाशन के विषय में भी बात छिड़ी। फल यह हुआ कि पं. दुर्गाप्रसाद और काशिनाथ 'निर्णय सागर' छापेखाने के अधिकारी जावजी दादाजी के यहाँ गए। वहाँ तीनों व्यक्तियों की सलाह से 'काव्यमाला' नामक मासिक पुस्तक निकालना निश्चित हुआ। यह 100 पृष्ठ की मासिक पुस्तक 17 वर्ष से बराबर निकल रही है। इसमें ऐसे अपूर्व प्राचीन ग्रंथ छपते हैं, जिनको देखना तो दूर रहा, नाम तक बहुतों ने न सुना था।

इस प्रकार 'काव्यमाला' के संपादन, ग्रंथों के संशोधन और उनके प्रकाशन में पं. दुर्गाप्रसाद इधर जयपुर में निमग्न थे, उधर हमजापुर में उनकी दो लड़कियों पर सहसा महामारी ने धावा बोल दिया। यह दुर्वार्ता ज्यों ही उनको मिली, त्यों ही उन्होंने वहाँ के लिए प्रस्थान किया, परंतु घर पहुँचने के पहले ही लड़कियाँ कालकवलित हो चुकी थीं। पं. दुर्गाप्रसाद के अल्प वयस्क लड़के केदारनाथ की भी महामारी की बाधा हुई, परंतु जगदीश्वर की कृपा से वह बच गया। तदंतर स्वयं दुर्गाप्रसाद पर इस घातक रोग ने आक्रमण किया और 18 मई, 1892 ई. को उनके प्राण लेकर छोड़ा।

पं. दुर्गाप्रसाद की मृत्यु का समाचार शीघ्र ही दूर–दूर पहुँच गया। जिसने उनकी विद्वत्ता का कुछ भी परिचय पाया था, उसे भी वह अमंगल समाचार सुनकर बहुत शोक हुआ। पंडितजी की कीर्ति यूरोप और अमेरिका तक पहुँची थी। अतः जर्मनी, अमेरिका और विलायत के सामयिक पत्रों और पुस्तकों में भी उनकी मृत्यु–वार्ता पर शोक–प्रदर्शक अनेक लेख प्रकाशित हुए।

'पायनियर', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'नेटिव ओपीनियन', 'इंदु–प्रकाश', 'जान–प्रकाश', 'केशरी', 'सुबोध पत्रिका', 'गुजराती' और 'राजस्थान समाचार' आदि इस देश के पत्रों ने उस समय पंडितजी के सद्गुणों का स्मरण करके अनेक विलाप– वेष्टित वचन कहे। दुर्गाप्रसादजी की मृत्यु का संवाद सुनकर डॉ. पिटर्सन ने 5 जून, 1892 ई. को, जो शोक–सूचक लेख 'टाइम्स ऑफ इंडिया' नामक अंग्रेजी के दैनिक पत्र में प्रकाशित किया और जिसे हम नीचे पूरा उद्धृत करते हैं, उसका आशय हम यहाँ पर दिए बिना नहीं रह सकते–

''कल ही मुझे एक अतीव शोकजनक समाचार मिला। कृपा करके आप उसे अपने पत्र में प्रकाशित कर दीजिए, क्योंकि उसे सुनकर जितना दुःख मुझे हुआ है, उतना ही दूसरे विद्वानों और मित्रों को भी होगा। जयपुर के जिन दुर्गाप्रसाद को गवर्नमेंट ने उनकी योग्यता का पुरस्कारस्वरूप महामहोपाध्याय की पदवी देना चाहा था, उनका शरीरपात हो गया। महामारी से उनकी मृत्यु हुई। मुझे अभी उस दिन उनका पत्र मिला था। पत्र जिस समय मुझे मिला, उसके कुछ ही पीछे शायद शरीरांतक आज्ञा ईश्वर के यहाँ से उनके पास पहुँची हो। वह पत्र उन्होंने बड़े उत्साह से लिखा था। उसमें काम–काज–विषयक अनेक सूचनाएँ थीं।

वह मेरे परम मित्र थे। उनके न रहने से जो हानि मुझे हुई है, उस पर लिखने बैठने का यह समय नहीं, परंतु मुझे यह विश्वास है कि भारतवर्ष, यूरोप और अमेरिका के जिन विद्वानों को यह विदित है कि संस्कृत के पुनरुज्जीवन के लिए दुर्गाप्रसाद ने क्या–क्या किया है, उनको पंडितजों की अकाल मृत्यु का संवाद सुनकर मर्मभेदी दुःख होगा। वह सच्चे विद्वान् थे, विद्या ही उनका सर्वस्व था। उनके साथ–साथ 'सुभाषितवाली' नामक संस्कृत–ग्रंथ का संपादन करते समय मुझे पहले–पहल उनकी विस्तृत विद्या, उनकी विशाल गुण–दोष विवेचन शक्ति और अपने देश के साहित्य पर उनकी निष्कपट भक्ति का परिचय मिला था। उनकी 'काव्यमाला', जिसमें अनेक ग्रंथ प्रकाशित करके उन्होंने उनको लुप्त होने से बचाया, उनकी विद्वत्ता की चिरकाल स्मारक रहेगी। जैसा मैं उनसे परिचित था और जैसा मैं उन्हें प्यार करता था, वैसा ही जो–जो करते रहे हैं, वे अच्छी तरह जान सकेंगे कि इस काल के कराल देहाघात ने पं. दुर्गाप्रसाद के साथ कितनी महत्ता और कितनी विशाल विद्वत्ता को इस संसार से खींच लिया है।''

यह एक विदेशी संस्कृतज्ञ की शोकोक्ति है। इसी से इस बात का अनुमान करना चाहिए कि पं. दुर्गाप्रसाद के इष्ट मित्रों और उनके कार्य–कलाप से परिचय पानेवाले इस देश के विद्वानों को उनकी मृत्यु से कितना शोक हुआ होगा। वह इस देश के एक रत्न थे। उनकी विद्वत्ता अपार थी। सुनते हैं, पंडितजी ने अपनी पत्नी को भी संस्कृत में प्रवीण कर दिया था। हमारे एक मित्र ने उनकी पत्नी को अपने कानों से संस्कृत बोलते सुना है। दुर्गाप्रसादजी जैसे विद्वान् थे, ईश्वर करे उनका पुत्र, केदारनाथ भी वैसा ही विद्वान् निकले। महाराज जयपुर ने केदारनाथ को अपने आश्रय में रखा है।

वल्लभदेव नामक एक प्राचीन पंडित ने अनेक अच्छे–अच्छे श्लोकों का संग्रह किया है और उनका नाम 'सुभाषितावली' रखा है। यह एक अद्भुत और परमोपयोगी ग्रंथ है। डॉ. पिटर्सन और दुर्गाप्रसाद मिलकर इसका संपादन किया और संशोधनपूर्वक छापवाया है। 'बॉम्बे संस्कृत–सीरीज' नामक बंबई की सरकारी पुस्तक–मालिका में गवर्नमेंट के व्यय से यह प्रकाशित हुआ है। पंडितजी की योग्यता और विद्वत्ता का पूर्ण परिचय पाकर बंबई की गवर्नमेंट ने कश्मीर के 'राजतरंगिणी' नामक इतिहास का भी संशोधन करके उसे प्रकाशित करने के लिए उनसे कहा था। इस बृहत् इतिहास के दो भाग अर्थात् प्रथम से अष्टम तरंग तक–पंडितजी ने अकेले ही बहुत अच्छी तरह संपादित किए। इतने में ही निष्ठुर मृत्यु ने उन्हें इस लोक से उठा लिया, अतएव 'राजतरंगिणी संबंधी शेष काम डॉक्टर पिटर्सन को ही करना पड़ा। दुर्गाप्रसादजी ने 'कथासरित्सागर' और 'शिशुपाल वध' इत्यादि और भी कई ग्रंथों का संपादन किया और निर्णयसागर प्रेस में छपवाया है। जिस पुस्तक को वह प्रकाशित करते थे, उस पुस्तक के कर्ता कवि का समय, उसकी जन्मभूमि उसके बनाए हुए अन्य ग्रंथों इत्यादि का विवेचन उपाद्घात में बड़ी हो योग्यता से वह करते थे। उनके विवेचन से उनका पांडित्य और विस्तृत ग्रंथावलोकन स्थल–स्थान पर सूचित होता है। उनकी धारणा–शक्ति भी अपूर्व थी। कवियों का समय–निरूपण करने में वह अनेक अश्रुत–पूर्व ग्रंथों के श्लोकों का प्रमाण देते थे।

पं. दुर्गाप्रसाद के कार्यों में 'काव्यमाला' उनकी कीर्ति की सबसे ऊँची पताका है। इस विद्वत् प्रिय मासिक पुस्तक को अब लाहौर के ओरियंटल कॉलेज के मुख्याध्यापक महामहोपाध्याय पं. शिवदत्त और बंबई के पं. काशिनाथ पांडुरंग परब संपादित करते हैं। इस माला में जो ग्रंथ छपते हैं, वे अलग ही पुस्तकाकार मिलते हैं। बड़े–बड़े ग्रंथ पृथक्–पृथक् रहते हैं और छोटे–छोटे कई एक ही साथ, एक–एक गुच्छक (भाग) में प्रकाशित होते हैं।

ऐसे छोटे–छोटे मनोहर प्रबंध आज तक सौ–सौ, डेढ़–डेढ़ सौ पृष्ठों के 14 गुच्छकों में निकल चुके हैं। इसके अतिरिक्त बड़े–बड़े कोई 80 ग्रंथ अलग ही पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। इनमें कोई–कोई ग्रंथ बड़े ही विचित्र हैं। यदि पं. दुर्गाप्रसाद इन अलभ्य ग्रंथों को अखंड परिश्रम करके न एकत्र करते और एकत्र करके इनके प्रकाशन का प्रबंध न करते, तो ये सब अमूल्य रत्न कुछ काल में नष्ट हो गए होते। पंडितजी के अभूतपूर्व कार्यों का कुछ परिचय देने के लिए आज तक काव्यमाला में प्रकाशित हुए मुख्य–मुख्य ग्रंथों के नाम हम यहाँ पर देना उचित समझते हैं–

काव्य

आर्या–सप्तशती	हर–विजय (50 सर्ग)
श्रीकंठ–चरित	स्तुति–कुसुमांजलि
धर्म्मशर्म्माभ्युदय	दशावतार–चरित
समयमातृका	चंद्रप्रभ–चरित
गाथा सप्तशती	विष्णु–भक्ति–कल्पलता
सहृदयानंद	युधिष्ठिर–विजय
बाल–भारत	हरचरित–चिंतामणि
सेतुबंध–महाकाव्य	राधव पांडवीय
द्विसंधान महाकाव्य	भारतमंजरी
पतंजलि–चरित	हीरसौभाग्य
राघव–नैषधीय	रावणार्जुनीय

नाटक

कर्पूरमंजरी	दूतांगद
अनर्धराघव	भर्तृहरि–निर्वेद
कंस वध	विद्या–परिणय
कर्णसुंदरी	रुक्मिणी–परिणय
जीवानंद	वृषभानुजा–नटिका
अद्‌भुत–दर्पण	अमृतोदय

चंपू, भाण और प्रहसन

परिजातहरण–चंपू	श्रीनिवासविलास–चंपू
रससदन–भाण	शृंगारतिलक–भाण
मुकुंदानंद–भाण	मंदारमरंद–चंपू
उन्मत्तराघव–प्रेक्षाणक	शृंगारभूषण–भाण
लटकमेलक–प्रहसन	

अलंकार और साहित्य–शास्त्र

काव्यालंकार	चित्र–मीमांसा
रसगंगाधर	काव्यानुशासन
काव्यालंकार–सूत्र	वाग्भटालंकार
काव्य–प्रदीप	अलंकार–शेखर
ध्वन्यालोक	साहित्य–कौमुदी
अलंकार–सर्वस्व	अलंकार–कौस्तुभ

फूटकर

प्राचीन लेखमाला	नाट्य–शास्त्र
प्राकृत पिंगल–सूत्र	वाणी–भूषण

कहाँ छह काव्यों के आगे सातवें काव्य–ग्रंथ का नाम तक इस प्रांत के पंडितों को पहले न विदित था, कहाँ अब पं. दुर्गाप्रसादजी की कृपा से क्षेमेंद्र और रत्नाकर इत्यादि कश्मीर के महाकवियों के अनेक अद्‌भुत–अद्‌भुत काव्य सहज ही मिलने लगे। धन्य पंडितजी की विद्याभिरुचि और धन्य पुस्तकों को एकत्र करने का अनुराग। उन्होंने वात्स्यायन मुनि–प्रणीत परम प्राचीन और प्रायः अप्राप्य काम–सूत्रों का भी 'जयमंगल' नामक टीका के साथ छपवाकर प्रकाशित कर दिया है। उनकी रसिकता और उनकी श्रम–सहिष्णुता की जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। वे इतने ग्रंथ एकत्र कर गए हैं कि अनेक वर्षपर्यन्त 'काव्यमाला' में छपते रहने पर भी वे निःशेष न होंगे। पं. दुर्गाप्रसाद यद्यपि इतने रसिक और काव्य–लोलुप थे, तथापि उनकी रचित कविता हमारे देखने में नहीं आई। प्राचीन महाकवियों के पीयूष निंदित काव्य–रस का आस्वादन करते रहने के कारण शायद उनको अपने मुख से कुछ कहने की इच्छा ही नहीं हुई। उनको 'काव्यमाला' की प्रत्येक संख्या के वेष्टन–पत्र (टाइटिल–पेज) पर एक श्लोक छपा रहता है। वह शायद उन्हीं की प्रतिभा का नमूना है। यह श्लोक यह है–

साधुर्जनः पश्यतु काव्यमाला
मित्यर्थयामो जगदीश तुभ्यम्,
कदापि मास्यां पततु प्रचण्डा
शनैश्चरस्येव खलस्य दृष्टिः।

अर्थात् हे जगदीश्वर! आपसे हमारी इतनी ही प्रार्थना है कि काव्यमाला को सज्जन ही देखें। शनैश्चर की दृष्टि के समान दुर्जनों की प्रचंड दृष्टि कदापि इस पर न पड़े।

हम भी पंडितजी के साथ 'एवमस्तु' कहते हैं। इस श्लोक में जो उपमा है, यह बड़ी ही मनोहर है और पं. दुर्गाप्रसादजी के ज्योतिष–ज्ञान के भी परिचायक हैं। शनैश्चर का नाम ही बुरा है। उसकी दृष्टि तो और भी भयोत्पादक है। उसके पड़ने से काम बिगड़े बिना नहीं रहता। उपमा की उत्कृष्टता के अतिरिक्त पद्य बहुत ही सरस और प्रसाद गुण–परिपूर्ण है।

पं. दुर्गाप्रसाद पंजाब के विश्वविद्यालय में संस्कृत के परीक्षक होते थे। 'संस्कृत प्रावीण्य–वर्द्धिनी' नामक एक सभा भी उन्होंने जयपुर में स्थापित की थी। उनकी दिगंत–व्यापिनी कीर्ति को सुनकर आस्ट्रिया देश के प्रधान नगर वियना के संस्कृतज्ञ विद्वानों की सभा ने उनको वहाँ आने के लिए आमंत्रण दिया था, परंतु जाति–बंधन के अवरोध ने उन्हें वहाँ न जाने दिया। उनके प्रचंड पांडित्य और उनकी अविश्रांत देश–सेवा से प्रसन्न होकर गवर्नमेंट ने उनको 'महामहोपाध्याय' की पदवी दी थी, परंतु यथोचित रीति पर उसके दिए जाने के पहले ही उन्होंने इस लोक से प्रयाण कर दिया। ईश्वर का आदेश!

दुर्गाप्रसादजी अपने जीवन का एक मिनट भी व्यर्थ न जाने देते थे। उनकी दिनचर्या नियमित थी, उसी के अनुसार वह अपने काम यथासमय करते थे। वह प्रातःकाल 4 बजे उठते थे और 6 बजे तक स्नानादिक नित्यकृत्यों से निश्चिंत हो जाते थे। 6 से 9 बजे तक वह 'काव्यमाला' का काम और 9 से 3 बजे तक भोजन, विश्राम और गृहस्थाश्रम के काम–काज करते थे। 3 से 5 बजे तक राजदरबार, तदनंतर ग्रंथावलोकन और लोगों तथा अपने मित्रों से भेंट। 9 बजे भोजनोत्तर शयन। इस क्रम में उन्होंने कभी व्यतिक्रम नहीं होने दिया। इसलिए वह कभी बीमार भी नहीं हुए।

राजपुत्र के सहपाठी हुए और प्रौढ़ावस्था में अपनी विद्या के बल से बड़े–पं. दुर्गाप्रसाद का चरित सर्वथा अनुकरण करने योग्य है। उनकी नियमित दिनचर्या उनका विद्या–प्रेम, संस्कृत के ग्रंथों को प्रकाशित करके लोकोपकार करने की उनकी उत्कट इच्छा, सभी गुण अनुकरणीय हैं। बाल्यावस्था में अपनी सुशीलता और अपने सौम्य स्वभाव के कारण वह बड़े धुरंधर विद्वानों के मित्र हुए। दुर्गाप्रसादजी के चरित्र से यह स्पष्ट है कि एक सामान्य मनुष्य भी सदाचरण और सद्विद्या के बल से सर्वसाधारण की तो कोई बात ही नहीं, बड़े–बड़े राजों–महाराजों का भी सम्मान प्राप्त कर सकता है और अपनी कीर्ति–कौमुदी से देश–देशांतरों को धवलित भी कर सकता है। (स.अ.)

आलेख

फेसबुकिया क्रांतिवीर

डॉ0 अवधेश कुमार चन्सौलिया
प्रा0 हिन्दी, डी.एम. 242 दीनदयालनगर,
ग्वालियर (म.प्र.) 09425187203

आज का समय संचार क्रांति का है। संचार के क्षेत्र में रोज नये– नये आविष्कार सामने आ रहे हैं। पहले रेडियो आया, फिर टेलीविजन और अब तो इस क्षेत्र में दर्जनों संचार माध्यम आ विराजे हैं। हो सकता है इनको हटाकर दूसरे भी शीघ्र ही आ जायें। मोबाइल जब से आया है, तब से तो सत्यानाश ही हो रहा है देश। जिन्हें पढ़ना चाहिए, वे मोबाइल में व्यस्त हैं। जिन्हें खेत में हल बक्खर तथा ट्रेक्टर चलाना चाहिए, वे भी मोबाइल से दोस्ती कर रहे हैं। महिलाएँ तो मोबाइल में इस कदर ध्यानस्थ हैं कि उनका दूध उफनता रहता है, सब्जी जलती रहती है, रोटी में फफोले पड़ जाते हैं, उन्हें कोई चिंता नहीं रहती। न सास की डाँट का भय और न पति की नाराजगी का। पति रोज लेट हो जाता है ऑफिस के लिए परिणामस्वरूप उसे अपने बॉस से रोज अपमानित होना पड़ता है। शाम को जब वह आता है, तो घर में कोहराम मच जाता है। यहाँ तक कि कई बार तलाक की नौबत आ जाती है। केश थाने में पहुँचते हैं। पुलिस की बल्ले–बल्ले हो जाती है। अनेक महिलाएँ अपने मायके वालों से या पूर्व प्रेमी से बतियातीं रहती हैं दिनभर। परिणामस्वरूप घर में रूस–यूक्रेन की तरह अनवरत युद्ध चलता रहता है।

हमारे देश में पत्नियाँ, पति की लम्बी उम्र के लिए करवा चौथ का व्रत रखती हैं, उस दिन वे पति से इस मँहगाई के युग में मँहगी साड़ी और मँहगा मोबाइल माँगती है। पति यदि इतनी मँहगी फरमाइश पूरी नहीं कर पाता, तो फिर करवा चौथ के दिन महाभारत छिड़ जाता है और इस कारण पत्नी, व्रत तोड़ देती है। कभी–कभी तो इस कारण से एक दूसरे के मर्डर तक हो जाते हैं।

कभी–कभी बच्चे भी मँहगे मोबाइल दिलाने की जिद माता–पिता से कर देते हैं या ज्यादा मोबाइल चलाने से रोकते हैं, तो बच्चे भगवान् के प्यारे हो जाते हैं। मोबाइल पर आजकल रील बनाने का शौक बहुत चला है लोगों में। महिलाओं में, बच्चों में यह रोग बहुत लग चुका है। खतरनाक रील बनाते समय या तो स्वयं ही वह हादसे में मर जाता है या रोको तो वह आत्महत्या कर लेता है या पति, पत्नी आपस में ही एक दूसरे को मार डालते हैं। आजकल फेसबुक, वाट्सएप, इंस्टाग्राम आदि पर आपको हजारों की संख्या में अनेक प्रकार की रीलें मिल जाएँगी। बुड्ढे तक मोबाइल में कुछ अधिक ही रस लेने लगे हैं। बुड्ढे लोग चालू महिलाओं के जाल में फँसकर अपना सब कुछ गँवा बैठते हैं और बदनामी के डर से अपना दुःख किसी से कह भी नहीं पाते हैं बेचारे।

फेसबुक और वाट्सएप के लिए आदमी को चौबीस घंटे भी कम पड़ रहे हैं। रात–दिन लोग फेसबुक पर ऐसे एकाग्रचित्त होकर चिपके रहते हैं जैसे कोई महान योगी भगवान् में ध्यान लगाये रहता है। कुछ अपनी फोटो डालकर लाइक और कमेंट्स देखकर ऐसे खुश होते हैं, मानो उन्हें कुबेर का खजाना मिल गया हो या उसको पुष्पक विमान मिल गया हो। कोई कहीं घूमने गया, तो वहाँ के फोटो डाल रहा है। कोई भिखारी को एक केला देकर अपने मित्रों के साथ ऐसे फोटो डालता है, मानो उसके समान दुनिया में कोई दानी है ही नहीं । कर्ण भी उनके सामने फीके पड़ जाते हैं।

कुछ वाट्सएप वाले अपने पड़ोसी को रोज राम–राम, नमस्ते, नमस्कार, सतश्रीअकाल लिखकर और ढेर सारे फूलों के चित्र भेजकर अपने संबधों की प्रगाढ़ता को घर बैठे ही बढ़ाते रहते हैं। त्यौहारों पर तो शुभकामनाओं की जैसी बाढ़ आती है, वैसी तो बिहार का शोक कही जाने वाली कोसी नदी में भी नहीं आती है। उस समय तो मँहगे से मँहगे मोबाइल भी दम तोड़ देते हैं। भारत में जितने लोग हैं, उससे कहीं अधिक मोबाइल हैं। ट्रेनों में, बसों में, चौराहों पर, कॉलेज में, पार्कों में यानी हर जगह मोबाइल में तल्लीन लोग मिल जायेंगे। इस मोबाइल के कारण कार्यालयों में लोगों के काम नहीं हो पाते। ढेरों काम पेंडिंग पड़े हैं। बच्चों के रिजल्ट ही नहीं बिगड़ रहे हैं, बल्कि बच्चे भी बिगड़ रहे हैं। मोबाइल द्वारा हुई शादियाँ कच्चे धागे की तरह टूट रही हैं। देश में मोबाइल क्रांतिवीरों की अच्छी खासी सेना तैयार हो गयी है।

अब तो संबंधों को निबाहने की सारी जिम्मेदारी मोबाइल पर ही आ गयी है। कोई सगा–संबधी मर जाये, तो फेसबुक या वाट्सएप द्वारा ही संवेदना व्यक्त करके संबधों की प्रगाढ़ता बढ़ाये रखते हैं। निमंत्रण–पत्र भी फेसबुक या वाट्सएप पर ही भेजकर इतिश्री कर ली जाने लगी है। यहाँ तक कि माँ, बाप, दादी, ताई, भाभी, भाई आदि स्वर्ग सिधार गये हैं, तो फेसबुक या वाट्सएप पर ही उनके अंतिम संस्कार में भाग लेकर रस्म अदायगी कर लेते हैं। इस मोबाइल ने संबधों की ऊष्मा को बर्फ में तब्दील कर दिया है।

एक बात और है फेसबुक और वाट्सएप ने अब हजारों ज्योतिषी पैदा कर दिये हैं। वे रोज ही आपके सटीक राशिफल की उद्घोषणा करते थकते नहीं और लोग कान लगाकर उनके राशिफल को सुनते और पढ़ते हैं और यजमान को कुंडली दिखाने हेतु मोबाइल नंबर देना नहीं चूकते। वे कहते हैं मैं एक दिसम्बर से 5 दिसम्बर तक हैदराबाद में फलाँ होटल में ठहरूँगा, 7 से 10 दिसम्बर तक चेन्नई के फलाँ होटल में रहूँगा। कुछ ज्योतिषी आन लाइन दक्षिणा अकाउंट में डलवाकर आपको मोबाइल पर ही आपका भविष्य बता देंगे। अब वह सही रहे या न रहे, उसकी कोई गारंटी नहीं।

कुछ लोग साँप, बिच्छू, किसी देवी–देवता बाबा आदि का चित्र डालकर लिखेंगे कि यदि लाइक या शेयर नहीं किया, तो पाँच दिन में तेरा बहुत बुरा होगा; शेयर कर दिया, तो दस दिन में तेरी किस्मत चमक जायेगी। कोई लिखेंगे यदि सच्चा हिन्दू है या सही बाप की औलाद है या सच्चा ब्राह्मण है तो जरूर शेयर करेगा, अन्यथा वह दोगला है। कोई लिखेंगे कि इन्हें कैंसर है, इनकी मदद करो। कोई रोते बच्चे को खड़ा कर देंगे कि ये बच्चा खो गया है, इसे शेयर करो।

आजकल एक बात और हो रही है, कुछ ज्ञानी कहते हैं कि यदि तुमने मट्ठे के साथ मूली खा ली, तो तुम मर जाओगे। गर्मियों में ये खाओ, सर्दियों में ये खाओ, बरसात में ये खाओ, दिन में ये खाओ, रात में ये न खाओ। कैसा भी कैंसर हो फलाँ बाबा के पास इसकी गारंटी के साथ शर्तिया दवा है। कहने का तात्पर्य यह है कि फेसबुक और वाट्सएप ने लाखों लोगों को चिकित्सक और विशेषज्ञ बना दिया है।

छोटे–बड़े सभी साहित्यकारों को भी मोबाइल के रोग ने अमरवेल की तरह जकड़ लिया है। उनका ज्यादातर समय फेसबुक और वाट्सएप पर ही बीतता है। कहीं सम्मान हुआ, तो विभिन्न कोणों से फोटो डाल रहे हैं। कहीं मंच पर बैठे हैं अकड़कर तो फोटो डाली है, कोई आलेख टुचपुंजिये अखबार या पत्रिका में छप गया, तो दिनभर फोटो डालते रहेंगे और बार–बार लाइक, कमेंट और शेयर देखते रहेंगे। इधर पत्नी चिल्लाती रहेगी कि घर में मेहमान आ रहे हैं और एक भी सब्जी नहीं है। सुबह हुई नहीं और लेकर बैठ गये मोबाइल लेकर। उठो जल्दी, सब्जी लाओ। अंत में उसका सब्र टूट जाता है और वह रसोई से वेलन लेकर दौड़ती है, तब कहीं वे वेमन से थैला उठाकर चल देते हैं सब्जी मंडी। वहाँ भी सब्जी वालों को मोबाइल में सम्मान लेते हुए अपना फोटो दिखाते फिरते हैं और देरी के लिए पत्नी की डाँट फिर सुनते हैं। फिर उसके सामने दंड–बैठक लगाते हैं, तब कहीं उस दुर्गा का क्रोध शांत

होता है।

आजकल बच्चे स्टंट बाजी बहुत करते हैं। वे अपनी रील बना रहे हैं और फेसबुक, वाट्सएप या यूट्यूब पर डालकर आत्ममुग्ध हो रहे हैं। अब तो शिशु भी मोबाइल में कार्टून फिल्म देखकर ही अपना आहार लेते हैं। यदि फिल्म नहीं दिखाई, तो वे रोने लगते हैं और फिर भोजन नहीं करते। मोबाइल में तरह तरह के लोग तरह तरह से सलाहकार बन जाते हैं। कोई रसोई के टिप्स बता रहा है, कोई कपड़े कैसे धोयें, इस पर प्रकाश डाल रहा है और कोई अपनी दुकान, होटल, रिसोर्ट आदि की खूबियाँ बढ़–चढ़कर बखान रहा है आदि–आदि। बहुत सारे लोग उनमें बूढ़े भी शामिल हैं, रोज अपनी फोटो डालकर सोचते हैं कि दुनिया में मुझसे बढ़कर कोई खूबसूरत है ही नहीं। पुरुष अपने को अमिताभ बच्चन और शाहरूख खान समझते हैं और महिलायें अपने आपको रानी मुखर्जी, काजोल आदि समझने लगतीं हैं। इस कार्य में महिलाओं का कोई शानी नहीं। रोज ही एक से बढ़कर एक खूबसूरत लड़कियाँ अपनी सुंदर तस्वीर डालकर मन–ही–मन बहुत खुश होती हैं। कुछ लड़कियाँ रेंककर लता मंगेशकर बनने का दावा करती हैं, तो कुछ लड़के फटी आवाज में किशोर कुमार बनने का ख्वाब देखते हैं और कुछ नृत्य में अपने से बिरजू महाराज को तुच्छ समझते हैं।

इन क्रांतिकारियों के रात–दिन लाइक और कमेंट गिनने में ही बीत जाते हैं। आजकल रूप के चक्कर में साइबर ठगी भी खूब दमखम से हो रही है। ज्यादातर रसिक लोग उनके मायाजाल में फँस जाते हैं। फिर रोते हैं। हाय! राम हम ठग गये–कहकर फूट–फूट कर रोते हैं। अब तो आत्म–हत्यायें भी लाइव होने लगीं हैं। कभी कभी वाट्सएप क्रांतिकारी समाज में अपने अनुसार क्रांति लाने के लिए अपनी विचार धारा वाले लोगों का वाट्सएप समूह बनाकर देश में दंगे भी करा देते हैं। लोग एडविन बनकर अपने आपको गौरवान्वित महसूस कर परम आनंद का अनुभव करते हैं। ऐसे लोग तानाशाही रवैया अपनाने लगते हैं और फिर किसी की नहीं सुनते। ग्रुप में जो भी इनकी अवहेलना करते हैं, वे उसका ग्रुप निकाला कर देते हैं।

जब से मोबाइल आया है इस धरती पर, तब से झूठ का प्रसार बहुत हो गया है। किसी ने पूछा–'कहाँ हो इस समय।' वे कहते हैं–'फूलबाग आ गया हूँ।' जबकि वे अभी मेला ग्राउंड पर हैं या किसी ने पूछा–'आपके घर आ जाऊँ।' तो कहेंगे–'आज मुझे बाहर जाना है या मैं बाहर हूँ।' जबकि वे घर पर ही हैं। ये क्रांति कारी पता नहीं, कब किसको मरवा दें और किसी शोकसभा का आयोजन करा दें।

एक बात और है मोबाइल के कमाल से हर कोई ज्ञानी और विशेषज्ञ हो गया है। आप बीमार हैं तो यह खा लेना, वह खा लेना आदि। साहित्य की चोरी में भी मोबाइल का बहुत बड़ा योगदान है। साहित्य की चोरी करके लोग निराला, पंत, महादेवी, प्रसाद, अज्ञेय आदि की तरह नामी–गिरामी साहित्यकार बन रहे हैं। अब तो ए आई को विषय दे दो कविता का तो वह बढ़िया कविता बनाकर आपके हाथों में दे देगा और आप जाइए मंच पर अपनी स्वरचित कविता बताकर वाहवाही लूट लीजिए। इस तरह मोबाइल लोगों के लिए वरदान साबित हो रहा है। इसके माध्यम से पल–पल नवीन प्रतिभाएँ जन्म ले रहीं हैं, उनके ज्ञान से लोग लाभान्वित भी हो रहे हैं। जय मोबाइल देवता की!

मीरा सिंह 'मीरा'
बक्सर (बिहार)
मो. : 9304674258

1. याद तुम्हारी

जब जब याद आती तुम्हारी
आँखें मेरी भर जाती हैं
कैसे मन की बात बताऊँ
याद बहुत तेरी आती है

तुझसा प्यार लुटानेवाला
दूजा जग में कौन भला है
हमसाया बन साथ चला जो
अवसर पाकर मुझे छला है
आँखों में छलके हैं सागर
याद तुम्हारी जब आती है

कितने सपने आँखों सजाकर
घर से मैं बाहर निकली थी
उड़ती–फिरती खुली हवा में
मैं तेरी प्यारी तितली थी
पंख हुए हैं जब से घायल
तेरी गुड़िया घबराती हे

अरमानों के पंख लगा दे
टूटे दिल में चाह जगा दे
अवरोधों को मारूँ ठोकर
मन में ऐसी प्यास जगा दे
नैया जब खाती हिचकोले
धीर बँधाने आ जाती है।

2. बात बनी है

खुद से जिसकी रोज़ ठनी है
उसकी बिगड़ी बात बनी है

बात पुरानी सच्ची मुच्ची
दुनिया करती आगजनी है

महल विराजे एसी, कूलर
सड़कों पर तो धूप तनी है

साफ सफाई घर आंगन में
मन के अंदर धूल जमी है

उलझे–उलझे रिश्ते–नाते
सोच–समझ की घोर कमी है

गूँगे की कब सुनता कोई
फरियादें कई अनसुनी है।

3. घबराना क्या

हो जब कहीं भी जुल्म साथी
मौन कभी मत रहना
साबित करना खुद को ज़िंदा
बातें सच–सच कहना

अवरोधों से घबराना क्या
हिम्मत धारण करना
अटल इरादे से होता है
पग बाधा का टरना

देख गौर से तूफानों में
एक दीप का जलना
कोई तेरे साथ चलेगा
भूले भ्रम न करना

चलना अपनी राह पकड़कर
हर पल आगे बढ़ना
सख्त मना है यहाँ ठहरना
मानो मेरा कहना

आँखों में भरकर उजियारा
अँधियारे से लड़ना
खुद को तू फौलाद बनाना
नहीं किसी से डरना

चलने का है नाम ज़िंदगी
यह जीवन है झरना
रखना दिल में मीठी यादें
सदा मगन खुश रहना।

यात्रा–वृत्तांत

माझुली

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

नागकेसर के फूल तब पूर्ण विकसित हो चुके थे, पंखुड़ियाँ झरने लगी थीं और केसर की मादक गंध छोटी–छोटी पहाड़ियों और उपत्यकाओं को लाँघती हुई शून्य में फैल रही थी। तीसरे पहर बड़े–बड़े शुभ बादल उठते थे और बच्चों की तरह नाना प्रकार के जंतुओं का रूप धरने की क्रीड़ा करते हुए आकाश के प्रांगण के पार निकल जाते थे। मंदिर श्रेणी के नीचे बिछे हुए सरोवर का नील विक्षुब्ध हो उठता था और मानो उसे परचाने के लिए किनारे के अशोक वृक्ष के दो बार खिले फूल झड़कर उस पर आ गिरते थे।

मैंने मधुमक्खियों से बचते हुए अशोक के उन दीप्तवर्ण फूलों का एक गुच्छा तोड़ लिया। तब नहीं जानता था कि क्यों, लेकिन थोड़ी देर बाद अपने पैरों की गति देखकर जाना कि मैं शुभ्रा के घर की ओर जा रहा हूँ।

मैंने फूल शुभ्रा को दे दिए। कहा, ''शुभ्रा, मैं विदा माँगने आया हूँ।''

शुभ्रा फूल अपने जूड़े में खोंसते हुए मेरी ओर देखकर हँस दी। एक खुली सफेद बादल–सी हँसी।

मैंने फिर कहा, ''भोर होते ही मैं यहाँ से चला जाऊँगा।''

उसने पूछा, ''फिर कहाँ देखना होगा?''

अबकी बार मैंने हँसना आवश्यक पाया, वैसी ही खुली हँसी, क्योंकि खुलापन ही एक अभेद्य आड़ है।

फिर मैंने कहा, ''फिर कभी होगा तो, शायद? कब का क्या पता?

पर अशोक तो हर साल फूलेगा, कोई ला दिया करेगा। काले के साथ दीप्त रंग सजता है?"

उसने मुँह फेर लिया। अशोक के फूलों से सजा हुआ कवरी–बंध मुझे पूरा दीख गया। पर यह मुझे नहीं लगा कि वह इसीलिए उधर मुड़ी थी। मैं जल्दी से लौट चला।

पश्चिम के देहातों के सूखे भू–भागों में बैलगाड़ी की चूँ–चूँ अच्छी नहीं लगती। पर असम के बाँसों से घिरे पथ में वहाँ ध्वनि पवन की सरसराहट के साथ मिलकर एक अद्‌भुत संगीत का रूप लेती। मानों विस्तीर्ण हरियाली अंधकार अपने पूरक रक्ताभ आलोक की स्तुति में कोई मंद्र–गंभीर छंद गुनगुना उठे।

तड़के तीन बजे चला था, सात बजे ब्रह्मपुत्र के तट पर पहुँच गया। अपना बोरिया–बिस्तर और दस दिन का राशन नाव में लादा। 'नावरिया' ने बड़े उत्लास के साथ कछार को लात मारी और नाव प्रवाह में डाल दी। यों तो ब्रह्मपुत्र के जिस अपूर्व द्वीप पर मुझे जाना था, उसका उत्तरी छोर तीन मील नीचे ही मिल जाता, पर वहाँ पाट सुविधा न होती, इसलिए और आठ मील नीचे धारा के साथ बहकर घाट पर जा लगने का विचार था।

नाव नदी के बीच में जाकर खड़ी हो गई। मैंने ध्यान से किनारे की शिस्त लेकर देखा, हम बिल्कुल स्थिर खड़े हैं। हवा जोर की थी, मेरे कहा, 'नावरिया, पाल खड़ी करो।'

नावरिया केवल जोर से हँस दिया।

असमिया लोग खूब हँसते हैं। बाधाओं पर और भी अधिक हँसते हैं। इसलिए कि वे बाधा को बाधा मानते ही नहीं, वह तो केवल काम न करने की एक युक्ति है और काम न करना पड़े तो क्यों न हँसा जाए। बात यह थी कि नदी का प्रवाह तो दक्षिण को था, जिधर हमें जाना था, पर हवा का रुख उलटा था। पाल लगाने से तो हम तीव्रता से उलटी दिशा में चलने लगते, बिना पाल के केवल जहाँ के तहाँ थे।

जिस तरह कश्मीरियों की प्रिय उक्ति है, 'कुछ फिकिर नई, उसी तरह असमियों की जीवनालोचना का निचोड़ जिस एक वाक्य में आ जाता है, वह है 'बड़ दिकदारी'। मैंने हवा की ओर मुँह उठाकर कहा, 'बड़ डिकडारी'। असमिया लोग' द' को प्रायः 'ड' ही उच्चारण करते हैं।

नावरिया ने मान लिया कि मैं उससे पूर्ण सहमत हूँ और बैठकर वह तंबाकू चबाने लगा।

लगभग तीन घंटे बाद, हमलोग जहाँ से चले थे, उस स्थान से कुछ और ऊपर ही किनारे आ लगे। फिर मैंने गाँव से बैलगाड़ी मँगवाकर सामान लादा और दूसरी दिशा से उस द्वीप पर आक्रमण करने चल पड़ा।

नानी कहा करती थी, 'यह लड़का न जाने कैसी घड़ी में जनमा है। उलटी गंगा बहाएगा।' गंगा तो पुण्यसलिला है, पर ब्रह्मपुत्र जरूर उलटा बहाया जा सकता है, आप मान लें।

मेरे साथ मेरा अनुचर मनदोज भी था। इस लघुकाय गोरखे में सबसे बड़ा गुण यह था कि वह जब जहाँ हो, सो सकता था। फिर बैलगाड़ी में तो हमें भी घंटे हो चुके थे, रात हो गई थी। मैंने अपने लिए स्थान सामने की ओर बनाया था, उसके बाद मेरे कपड़ों का और राशन का बॉक्स था, फिर मनदोज के बैठने का स्थान, फिर पीछे हमारे दोनों बिस्तरे, इस प्रकार गाड़ी का बैलेंस भी ठीक हो गया था और हमें स्थान भी अपनी रुचि के अनुकूल मिल गया था। मुझे सामने का दृश्य देखने का चाव था और मनदोज को ट्रंकों की दरार में सिर फँसाकर और बिस्तरों पर टाँगें फैला कर सोने का। हमलोग कुछ खाकर एक बजे 'प्रत्यावर्तन के पथ पर' चले थे, तबसे एक बार आधे घंटे के लिए मेरे जगाने पर मनदोज उठा था। हमने चाय बनाकर पी थी। अब रात के ग्यारह बजे थे, मनदोज तो सो ही रहा था और अब तो सुबह तक जागने का प्रश्न ही क्या? गाड़ीवान भी कुछ एक गीत गुनगुनाकर ऊब गया था और कुछ–कुछ ऊँघता हुआ बैठा था, बैल यंत्रवत् चले जा रहे थे।

तारे थे। ऊपर छत के अधगोल और सामने गाड़ीवान के कंधे के बीच की जगह में से दो–चार तारे दीखते थे, कभी–कभी मोड़–माड़ आने पर एक–आध अधिक दीप्त तारा झलक दे जाता था। मैं भी ऊँघने लगा, ऊँघ का जादुई मरहम मेरे थके अंगों और टूटती हड्डियों को सहलाने लगा।

हठात् चौंककर जगा। गाड़ी खड़ी थी। गाड़ीवान ने कहा, ''हमलोग पहुँच गए।'' मैंने देखा, एक सरोवर के किनारे गाड़ी खड़ी है। अशोक का पेड़ शायद इसके पास भी होगा। पर वह फिर जाएगा। मैंने जोर से आवाज दी, ''मनदोज! ओ मनदोज!''

नींद से भर्राई आवाज बोली, ''जी साहब।''

''उठो अब। सामान उतारो। यहाँ बाहर ही बिस्तरे कर लेंगे, सबेरे देखा जाएगा।'' सहसा चुप, यद्यपि मैं अनुभव कर सका कि वह सुप्ति की नहीं है, अत्यंत सजग है।

''क्यों मनदोज, क्या है ?''

मनदोज ने अविचलित भाव से उत्तर दिया, ''साहब, बिस्तरा तो गिर गया।'' मनदोज के सोते–सोते दोनों बिस्तरे गाड़ी के दचके से कहीं गिर गए थे। दचकों के कारण सामने हमें पता न लगा और पीछे मनदोज की नींद न टूटी।

मैंने बड़े यत्नपूर्वक जल्दी–जल्दी मन–ही–मन दुहराना शुरू किया, "असम बड़ा सुंदर देश है। यहाँ के लोग बड़े हँसमुख और मिलनसार हैं। असम बड़ा सुंदर..." क्योंकि नहीं तो मुँह से जो कुछ निकलता, वह पक्के साहबों के साथ रहे हुए मनदोज को अप्रत्याशित भले ही न लगता, मेरे लिए अवश्य पश्चात्ताप का कारण बनता।

फिर मनदोज को कुछ कहने के लिए मैंने कहा, ''चाय बनाओ।''

गाड़ीवान से कहा, ''सामान उतारकर गाड़ी मोड़ो, हम बिस्तर खोजने चलेंगे।''

मनदोज ने तत्परता से कहा, ''जी साहब।'' और ट्रंक उतार लिये। गाड़ीवान ने कुछ कम तत्परता से कहा, ''बड़ डिकडारी।''

सौभाग्यवश अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। कोई तीन मील दूर पर एक और आधा मील और आगे दूसरा बिस्तर मिल गया जो एक गढ़े के पास के कीचड़ में गिरा था, वह बिस्तरा मेरा नहीं, मनदोज का था। जी, कुछ ठंडा हुआ। तीन घंटे बाद लौटकर देखा, आग जलकर ठंडी हो चली है, केतली उस पर चढ़ी है और मनदोज ट्रंक पर सिर टेके सो रहा है।

सबेरे ही मोटर पकड़ी और अढ़ाई घंटे बाद कोकिलामुख जा पहुँचे। नाम से अनुमान था कि यहाँ कोकिला नदी ब्रह्मपुत्र में पड़ती होगा, पर थे वहाँ केवल तीन–चार झोंपड़े और नाव की प्रतीक्षा में बैठनेवालों के लिए ठेकेदारों द्वारा बनाया हुआ एक फूस का छप्पर। कोकिला कुछ मील दूर पड़ती थी। संभव है पहले कभी उसका मुख यहीं रहा हो।

हमने बड़ी नाव की प्रतीक्षा न कर एक आठ मन की डोंगी भाड़े ठहराई और बैठ गए। यहाँ से ठीक सामने द्वीप का मध्य भाग पड़ता था, सीधे लगभग तीन मील का फासला था, पर बीच में एक और छोटे द्वीप का चक्कर काटकर जाना पड़ता था, इसलिए चार मील से कुछ अधिक जाना पड़ेगा, फिर द्वीप के मध्यवर्ती घाट कमलाबाड़ी में पहुँच जाएँगे।

यहाँ पर इस रहस्यमय द्वीप का कुछ परिचय दे देना उचित होगा।

ब्रह्मपुत्र स्रोत से समुद्र तक अपने मार्ग में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में बह लेता है। उत्तर–पूर्वी असम में प्रवेश करते समय उसका पूर्वमुखी प्रवाह ब्रह्मकुंड में आवर्तित होकर दक्षिण–पश्चिम को बहने लगता है, फिर गंगा (पद्मा) से मिलने पर वह दक्षिणमुखी हो जाता है। ब्रह्मकुंड के आसपास उसका रूप कुछ वैसा ही है, जैसा लछमन–झूला–ऋषिकेश की गंगा का यद्यपि ब्रह्मपुत्र के गहन–वनाच्छादित महिष गजेंद्र सेवित कछार का सौंदर्य अपूर्व और अतुलनीय ही है।

तो ब्रह्मपुत्र के समतल मार्ग के बीच में माझुली नाम का एक द्वीप है। नदियों में छोटे–छोटे टापू होना मामूली बात है, लेकिन माझुली अपने ढंग का अनूठा टापू है–संसार की किसी और नदी में 70 मील लंबा और 10 मील चौड़ा, लगभग 25 हजार की जनसंख्या वाला द्वीप मैंने तो नहीं सुना। यों वर्षाकाल में जब नदी का पानी चढ़ता है, तो द्वीप की लंबाई बीस–एक मील कम हो जाती है और जगह–जगह पानी भर जाता है, लेकिन तो भी क्या?

माझुली का यही एक महत्त्व हो, सो नहीं। असमिया सांस्कृतिक जीवन में उसका एक गौरवपूर्ण स्थान है। वैष्णव संत शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव के संप्रदाय ने यहीं पर सत्र स्थापित किए और उसकी परंपरा को चलानेवाले वैष्णवों के कई सत्र यहाँ अब भी चल रहे हैं। एकेश्वरवादी निराकारोपासक असमिया वैष्णव असम भर में फैले हुए हैं और उनके धार्मिक जीवन को माझुली के ही सत्राधिकारों से प्रेरणा मिलती है। यों विभिन्न सत्रों की प्रतिष्ठा में न्यूनाधिक का अंतर होना स्वाभाविक है, पर उत्तर भारत के अनेक मठों और मठाधीशों की तरह ये स्थान व्यसन और विलासिता के शिकार होकर जन–साधारण की दृष्टि में पतित नहीं हो गए हैं और सभी सत्र असमिया हिंदुओं द्वारा आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। अभी इतना परिचय यथेष्ट होगा, कुछ और तो प्रकारांतर से क्रमशः मिलेगा ही।

दोपहर होते–न–होते कमलाबाड़ी जा पहुँचे। घाट से बढ़कर मीरी जाति के एक गाँव के पास से होकर डाकबंगले पर जा पहुँचा, सामान रखकर मुँह हाथ धोया। मनदोज से प्रार्थना की कि अब कम–से–कम घंटा भर जागते रहकर कुछ डिब्बे का और कुछ ताजा मिलाकर भोजन दे दे और उसके 'जी साऽब की अंतर्ध्वनि से कुछ आश्वस्त होकर आरामकुर्सी पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगा।

प्यास थी। यों मनदोज को पीने के लिए पानी उबालकर रखने की आदत डाल दी थी, पर अभी फौरन तो वह नहीं चलेगा। चौकीदार से पूछा तो उसने बताया कि वहाँ विलायती फिल्टर है, साहब लोग उसी का पानी पीते हैं। मैंने कहा, ''उसमें हाथ–पंप से ताजा पानी डाल दे और छनने पर गिलास भर दे दे।'' दो मिनट के अंदर ही वह गिलास भर पानी ले आया, तो मैंने विस्मय से पूछा, ''इतनी जल्दी छन भी गया? बासी पड़ा हुआ तो नहीं है?''

चौकीदार ने आहत स्वर में कहा, ''नहीं साहब, अभी ताजा डालकर लाया हूँ।'' मानवता में मेरी अपार श्रद्धा है। पर असम के पलटनिया जीवन में सीख लिया था कि पानी के बारे में सहज विश्वासी न हो। मैंने जाकर फिल्टर देखा तो उसके ऊपरी अंश में बिल्कुल पानी नहीं था, चलनी के नीचे जल अब भी भरा था। मैंने अविश्वास के साथ कहा, ''सारा पानी इतनी देर में छन भी गया?''

चौकीदार की मुद्रा ने कहा, 'साहबों के साथ अपार धैर्य की जरूरत पड़ती है–पर मुझमें है।' वाणी ने कहा, ''नहीं, मैंने चलनी उठाकर भर दिया था।'' कारण? यही कि फिल्टर करके निकालने में बहुत देर लगती है, जो कि 'बड़ डिकडारी' की बात है।

मैंने मन मारकर कहा, ''भाल।'' यह चला गया, तो मैंने छिपाकर पानी नाली में डाला और दो–एक किताबें निकाल कर बैठ गया कि चाय आने तक प्यास को बहलाए रखें। पीछे मनदोज से फिल्टर का पानी फेंकवा कर नया भरवाया कि रात–भर में बिना 'बड़ हिकडारी' के छन जाए।

कुछ एक बकरियाँ डाकबंगले के हाते में चली आई। बिना झिझक के वे बरामदे की ओर बढ़ीं, सीढ़ी चढ़कर बरामदे में और फिर कमरे में चली आई। एक बार मेरी ओर देखा, शालीनता से सिर मोड़कर मेरी उपस्थिति को क्षमा कर दिया और थूथनी से मेरी पुस्तकें उलटने लगी।

मुझे मानवेतर प्राणियों में ठीक वैसी ही दिलचस्पी है, जैसी मानव शिशुओं में, इतर जंतुओं में शिशु के सभी गुण–अवगुण होते हैं और दोनों का समान पर्यवेक्षण विकासवाद के सिद्धांतों को सहज ग्राह्य बनाने के लिए सबसे अच्छी पाठशाला है। कभी–कभी बहुत समय तक निश्चल बैठकर मैं एक–आधा ढीठ गौरैया को इतना आश्वस्त कर सका हूँ कि यह क्षण भर मेरे कंधे पर बैठकर फुर्र उड़ जाए। कुत्ते, तोते, मोर, चकोर, कबूतर, तीतर आदि के अलावा गिलहरी, बनबिलार, लंगड़े कौए और चील के बच्चे तक मैंने पाले हैं और उनका विश्वास–भाजन बनने में आनंद पाया है, पर माझुली में जंतु और मानव में जैसा साधारण सहज साहचर्य देखा, वैसा और कहीं नहीं देखा। पहली यात्रा में तो यह बात छोटे–छोटे पशु–पक्षियों को लेकर ही लक्षित हुई, दो–एक बार हाथी अपने आप डाकबंगले में आकर घुटने टेक और सूँड़ उठाकर सलाम करके मेरे हाथों केले के फल और मूँगफली आदि खा गए, पर वे आसपास के सत्रों के सिखाए हुए, हाथी थे, किंतु दूसरी बार माझुली आकर मैंने देखा कि द्वीप के हिंस्र पशुओं के साथ भी मानो मानव द्वीपवासियों का अलिखित समझौता है।

दूसरी बार जब गया, तब बाढ़ के दिन थे। बाढ़ के दिनों द्वीप की लंबाई प्रायः दो–तिहाई रह जाती है और बीच में भी जहाँ–तहाँ नदी–नाले दीर्घा और खाल–बील तथा 'मरी नदियाँ' अपनी मर्यादाएँ तोड़कर बहुत–सा प्रदेश लील लेती हैं, जिससे द्वीप का क्षेत्रफल शायद आठवाँ भाग हो जाता है... द्वीप में जहाँ–तहाँ धरातल कुछ ऊँचा है, वहीं गाँव बसे हैं, किंतु इतनी ऊँची भूमि बहुत कम है, जो बिल्कुल सुरक्षित हो और गाँव के घरों में बहुधा पानी आ जाता है। कुछ सत्र ही इतनी ऊँची जगह पर हैं कि पक्की इमारत बनाना उचित समझा जाए, नहीं तो घर प्रायः बाँस और फूस के 'बासे' हैं– संपन्न घर में दीवार पर गारे की पपड़ी जमाकर ऊपर चूने से

पुताई कर दी जाती है, बस। इस वर्णन से अनुमान नहीं हो सकता कि असमिया घर कितना स्वच्छ और सुव्यवस्थित होता है, वह देखकर अनुभव करने की चीज है।

माझुली में सबसे ऊँची जगह वहाँ की एक मात्र सड़क है। उत्तरी असम को जाने के लिए यही मार्ग है और इसे वर्ष भर चालू रखने के लिए बहुत ऊँची पटरी पर बनाया गया है। सड़क द्वीप के आर–पार बनी है। द्वीप पार करके ब्रह्मपुत्र की दूसरी धारा सुवर्णश्री अथवा सुवनसिरी फिर पार करनी पड़ती है।

बाढ़ में जब गाँवों में पानी भर जाता है, तब नीचे प्रदेश तो डूब ही जाते हैं, द्वीप भर से साँप ऊँची जमीन पर या पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। वन्य पशु, जिनमें बाघ की पर्याप्त संख्या भी है, दलदल और हाथी घास के प्रदेश में सिमटते हुए क्रमशः सड़क की पटरी की ओर बढ़ जाते हैं और अंत में सड़क पर ही आ जमते हैं।

दूसरी ओर गाँवों में जल–पलावन द्वारा खदेड़े जाकर ग्रामवासी भी ऊँची जमीन पर आश्रय लेते हैं। प्रत्येक के अनेक डोंगियाँ तो होती ही हैं, जो निकटवर्ती खाल या मरी नदी में पड़ी रहती हैं, स्थानांतर करने में ये काम आती हैं। हर गाँव के अपने–अपने मचान भी बने होते हैं, जिनकी देख–रेख और मरम्मत गाँव–भर की जिम्मेदारी होती है। पानी अधिक बढ़ जाने पर ग्रामवासी पेड़ों पर बने हुए इन मचानों का आश्रय लेते हैं और अपने ढोर–डाँगरों को खदेड़कर सड़क की पटरी पर कर देते हैं और वहीं सूखी पुआल डाल देते हैं।

इस प्रकार बाढ़ के दिनों में वह दस–एक मील की सड़क की पटरी एक विराट् मेले का रूप लेती है–भेड़–बकरी, लोमड़ी– सियार, बाघ–बघेल–बिलार, साँप–बिच्छू–सब मानो अपनी–अपनी भीटी पर आ जमते हैं और मचानों पर बैठे मानव प्राणी धैर्यपूर्वक मेला देखा करते हैं। परदेशी वह दृश्य देखकर थर्रा जाएँ, किंतु जिस तरह मौसम में मौसमी बुखार होता ही है और कोई यह नहीं कहता कि महामारी फैल गई है, उसी तरह माझुली के वासी भी अपने जीवन–क्रम के इस नियत अनिवार्य अंश को स्वीकार कर लेते हैं। दैव पर झल्लाया नहीं जाता, उसे सहने का उपाय किया जाता है। 'डिकडारी' वह है निःसंदेह, किंतु ढाँचे में बैठाई हुई, साँचे में ढली हुई, इसलिए वश्य। और फिर पानी उतर जाता है, सभी लोग अपने–अपने घर जाते हैं, पशु अपने बाड़ों में, बाघ अपनी माँद में और साँप अपनी बाँबी में, और ढर्रा चलता रहता है। ढर्रे का चलना ही तो सनातन है और इस सनातन तत्त्व की सहज अनुभूति ही तो 'विश्वमैत्री' और 'जीवदया' का रहस्य... यह नहीं कि जीवन के अनुक्रम में व्याघात न होता हो, किंतु बाघ एक–आध को खा ले, दो–एक को धपड़िया जाए, तो भी क्या? जिस तरह यह लंबी हाथी–डूबी घास सारी दलदल भूमि पर छा जाती है, उसी तरह विवर्तन का नियम भी... इस सबका व्यक्तिगत अनुभव हुआ दूसरी यात्रा में, किंतु पहली ही यात्रा में जब बकरियाँ मेरी पुस्तकें उलट–उलटकर, कुछ हताश होकर चली गई, तब चाय पीते–पीते मैं कल्पना में माझुली के जीवन का चित्र देखने लगा और वह चित्र शब्दों के सूत्र में गुँथने लगा। आज भी मेमने आकर मेरी पुस्तकों को उलटा जाएँगे, और नीलकंठ किंशुक के ठूँठ पर ऊँघेगा और सेमल की बुढ़िएँ हवा पर तैरती चली जाएँगी। आज भी धुँधला आर्द्र प्रकाश बिछल जाएगा नील स्फटिक खंडों पर चिकनी–लचकीली ग्रीवाओं और तरंगायित नितंब–लहरियों के ओज भी वस्त्र–खंडों में से कुच–मुकुलों का निर्व्याज सौंदर्य झाँक जाएगा निरायास स्वच्छंदता की ही ओट लेकर!

आज भी फूस के छप्परों को छितरा जाएगी ढोलकों की गमक और बाँसुरी का भटकता सुर वेणु–कुंज में बसी अपनी चिरंतन जननी को उत्कंठा से पुकारेगा और आषाढ़ में नदी भरेगी, और दस्यु लहरें लूट ले जाएँगी कगारों की रेती, तोड़ लेंगी करारें और फेन की ध्वजा फहराती हुई सदर्प बढ़ती चली जाएँगी अंतहीन सगर की ओर। एक बार फिर रातें अंधियारी हो जाएँगी और दिन उदास, पत्तियाँ पीली पड़ जाएँगी और तने जलमग्न होंगे बिच्छू और साँप के फूत्कारों में क्रोध बेबस हो उठेगा, बाघ आठ को मार डालेगा और पुजारी की बहू को झंझोड़कर छोड़ आएगा, और कुएँ के पास छह भेड़ों की अंतड़ियाँ सड़ती रहेंगी,

और मानवीय खोपड़ी के आयतन पर गलगंडों का विस्तार विद्रूप हँसी हँसेगा
एक बार फिर
लड़खड़ाते तरु–शिखरों से युगदर्शी आँखें
मटमैले प्लावन को हेरेंगी
काल की भेदक व्यथा ही काल को पारदर्शी बना देगी
और झलकेगा एक स्वप्न, जिसमें
फेन का उफान, हट जाएगा, और बेत वृक्षों की छड़ी–सी अंगुलियों
से रेशम के पालनों पर झूलते हुए उतरेंगे
लोमहर्ष कीड़े–
बुदबुदाती दलदल की कीचड़ में खोजते
अंकुर किसी पंकाकुल जीवन के
जिन्हें शीघ्र भूखे हाथ टोह–टोह खोल लेंगे
उनके सहारे एक बार फिर
मूर्च्छित विपन्न प्राणों में,
युग जीवन की युगातीत चेतना जगने को
काल का प्रवाह एक सूत्र है. पशु है, जो बाँधता है बेबसी में
ज्ञान एक लीक है, जो बहिष्कृत करती है
मेरी आँखें अनभिज्ञता के झरोखे से
स्पष्ट देख पाती हैं
युगातीत शांति इस चक्रावर्त जीवन–विवर्तन पर
इतना ही देखता हूँ आगे यदि देखता
और यदि जानता और गहरे पैठता,
तो शायद मेरी दृष्टि भी
बँध जाती, घिर जाती, कट जाती काल के प्रवाह की थकान से।
मैं न तब देख पाता कौतूहली मेमने
न ही मुझे बोध होता नील–स्फटिक ग्रीवा का
ध्यान मेरा टिकता न वक्ष के मुकुल पर
एक बार और फिर, फिर और एक बार
और एक बार फिर
किंतु आज ढोल की गमक पर
कीर्तन का स्वर टेर रहा है
चंपक की शय्या पर देवी राधा सोई हैं
आवें कब श्याम? मिटे वेदना विरह की
मिटे प्यास उभयमुखी, दोहरे विलय में
जागे नई एक अंतहीनता
क्योंकि जितनी समर्थ अंतहीन शक्ति श्याम की है
उतनी ही आदिहीन देवी की भी प्यास है।

आउनियाटी सत्र के सत्राधिकारी ने हाथी भेजा। हाथी छोटा था, इतना छोटा कि उसकी पीठ पर घोड़े की तरह काठी मारकर बैठा जा सके, किंतु अत्यंत फुर्तीला। हम सड़क से उतरकर
पगडंडियाँ–नाले–ताल दीर्घाएँ और खालें पार करते हुए दो घंटे में आउनियाटी पहुँच गए।

आउनियाटी सत्र में आधुनिकता ने प्रश्रय पाया है। सत्र में रेडियो है और नियत समय पर शिष्य–मंडली सत्राधिकारी अथवा गोसाईं के बरामदे में एकत्र होकर समाचार सुनती है, किंतु आधुनिकता इतनी नहीं बढ़ी है कि

मुझ–सा परदेशी एक अत्यंत कौतूहल की वस्तु न रह जाए। मैं पहुँचा तो दोपहर के रेडियो–प्रोग्राम का समय था। गोसाईं–घर में तीन सौ शिष्यों की भीड़ के सामने रेडियो के पास चौकी पर गोसाईं बैठे थे।

परिचय में धर्म–कुल–नाम आदि सब पूछा जा चुका, तब अधिकारी ने मुझे अपने पास एक और चौकी पर आसन डलवाकर बिठाया। रेडियो बंद कर दिया गया और बातचीत होने लगी। अधिकारी संस्कृत पढ़े हैं। मेरी संस्कृतमयी हिंदी वह अच्छी तरह समझते और उनकी असमिया मैं समझ सकता था। तीन सौ निःस्तब्ध श्रोताओं के सामने एक व्यक्ति से बातचीत करने का अभ्यास मुझे तो नहीं था, फिर भी बात चल ही निकली और उसी में से क्रमशः यह प्रस्ताव भी निकला कि में शिष्य–मंडली की तत्कालीन विश्व परिस्थिति पर प्रवचन भी दूँ। मैंने सबको प्रश्न पूछने का निमंत्रण देकर बात आरंभ की और लगभग दो घंटे तक बातचीत चलती रही।

सत्र में आतिथ्य की परिपाटी है। एक कमी में हाथ–मुँह धुलाकर चौकी पर बिठाया गया, पत्तल पर सत्र के बने हुए मिट्टी के पात्र में सत्र का बना मीठा दहीं दिया गया, फिर नारियल के कर्पूरमिश्रित लड्डू और दूध तथा आधुनिकता के नाम पर चाय। दही और चाय में कोई स्वाभाविक मेल तो नहीं जानता, पर सत्र में स्वयं गोसाईं के हाथ से दही पाना अतिथि के लिए गौरव की बात है, यह मैं शिष्य–मंडलों के चेहरों पर स्पष्ट लिखा देख सका। तीसरे पहर जब गोसाईं को प्रणाम करके हाथी पर सवार हुआ और उनकी आज्ञानुसार चार ब्रहाचारी सत्र–द्वार तक पहुँच गए, तब महावत ने कहा भी, ''प्रभु (शिष्य–समुदाय सत्राधिकारी को प्रभु संबोधन करता है), आपसे बहुत प्रसन्न हुए हैं।'' मैंने मुस्कुराकर पूछा, ''कैसे जाना?''

''उन्होंने आज तक इतनी देर किसी बाहरी आदमी से बात नहीं की। कमिश्नर भी आता है तो थोड़ी देर बात करके भेंट समाप्त कर देते हैं।''

कमिश्नर के साथ तुलना हास्यास्पद लगी। हँसी रोककर मैंने कहा, ''कमिश्नर तो फिरंगी है न, मैं तो अपने देश का आदमी हूँ और फिर वह अधिकार से आता है, मैं तो मिलने आया था।''

महावत ने सिर हिलाकर कहा, ''ना, आपोनि विड्डान मानुह।''

(नहीं, आप विद्वान् मनुष्य हैं)।''

मैं हँस दिया।

डाकबंगले पहुँचकर हाथी को केले और महावत को दो रुपए देकर बैठा ही था कि दो ब्रह्मचारियों ने आकर कहा, ''प्रभु ने आपके लिए प्रसाद भेजा है।'' और केले के पते से मुँह बँधी दो छोटी मटकियाँ मेज पर रख दीं। दूध की रबड़ी करके जमाया गया यह मीठा दही कई दिन तक रहता है और रखा जाता है।

मैंने अभिभूत होकर ब्रह्मचारियों को धन्यवाद दिया और गोसाईं को पुनः कृतज्ञ प्रणाम कहलवा भेजा।

दक्षिणपाट सत्र का हाथी भीमकाय था और प्रौढ़– दक्षिणपाट सत्र भी अधिक प्राचीन है और आधुनिकता की छूत से अधिक सुरक्षित भी। सत्राधिकारी संस्कृत के पंडित हैं।

कमलाबाड़ी से यह सत्र लगभग दस मील पड़ता है, अतः सवेरे ही प्रस्थान किया गया। राह में जगह–जगह हाथी–डूबी घास के जंगल पार किए, जिनमें हाथी की पीठ पर सवार हम लोग के केवल सिर घास से ऊपर उठते थे और कंधे तक शरीर छिप जाता था। पैदल चलने वाले इन जंगलों में घास के भीतर– भीतर सुरंगें बना लेते हैं। सुरंगों की चौमुहानियाँ भी होती हैं और उनमें भटक जाने पर तनिक भी कठिनाई नहीं होती।

हाथी सधा हुआ था, महावत दक्ष। अंकुश की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। महावत के आदेशानुसार हाथी राह के झाड़– झंखाड़ इधर या उधर ठेलता या उखाड़ फेंकता, शाखें तोड़कर गिरा देता और आज्ञा मिलने पर बीच–बीच में पतियाँ खा भी लेता।

घास के दो झुरमुटों के बीच में एक खुली वीरान जगह पार करते हुए हाथी अचानक उछला और फिर फुंकार मारकर एक ओर बेतहाशा दौड़ा। महावत माथे पर से पीछे खिसककर मेरे पास आ गया। अंकुश उसके हाथ में था नहीं, कमर में घोंसी हुई एक छोटी बँसरी हाथी के माथे पर मार–मारकर वह उसे वश में करने का विफल प्रयत्न करने लगा, पर हाथी किसी तरह नहीं माना, फुंकारता हुआ इधर–उधर दौड़ता रहा, बीच–बीच में मुड़–मुड़कर तिरछी नजर से पीछे को देख लेता और तेज दौड़ने लगता।

मैं टाँगें सामने को फैलाकर बैठा हुआ था। महावत ने पीछे हटते समय एक टाँग पकड़ ली थी और उससे क्रमशः और जोर से चिपटता जा रहा था।

मैंने पूछा, ''क्या हुआ है हाथी को?''

बोला, ''नाग देखकर डर गया है।''

''तुमने देखा था? कहाँ?''

''हाँ, हाथी के पैर के पास ही था, बच ही गया। नाग से हाथी बहुत डरता है''

''अंकुश नहीं है?''

''अंकुश तो मैं लाया नहीं, कभी जरूरत नहीं पड़ती।'' और महावत और भी जोर से मेरी टाँग से चिपट गया।

''यह कब तक ऐसे घबराया रहेगा?''

''अभी ठीक हो जाएगा, साहब, डरें नहीं।'' और मेरी टाँग पर उसकी जकड़ और भी कड़ी पड़ गई।

अब तक सहता गया था। अब 'न डरने' की यह शिक्षा पाकर मैंने कहा, ''डर मैं रहा हूँ या तुम?'' और झकझोरकर टाँग छुड़ा ली। महावत दुबका रहा।

लगभग आधे घंटे बाद हाथी हाँफता हुआ रुक गया, फिर हमलोग धीरे–धीरे आगे बढ़े। सत्र–द्वार में प्रविष्ट होकर साल, जारुल और बाँसों के सघन कुंज पार करते हुए हमलोग गोसाईं–घर की ओर बढ़े। मेरे संबंध में शायद आउनियाटी सत्र से पहले ही पूछताछ कर ली गई थी। गोसाईं–घर से पहले ही मुझे सोन भंडाल (स्वर्ण भंडार) में ले जाकर आसन दिया गया और सूचित किया गया कि प्रभु का आदेश है, अतिथि धूप में दूर से आए हैं, पहले विश्राम और जलपान कर लें, फिर भेंट होगी।

मैंने कहना चाहा कि नहीं, पहले दर्शन करूँगा, पर प्रभु के आदेश में न–नु–नच नाहीं होती, यह उनके काकती से कहलाना आवश्यक न था। काँसे के सुंदर कामदार पात्रों में दही, चिउड़ा, शक्कर आदि परोसे गए। बात चलाने के लिए मैंने पूछा, ''ये काँसे के पात्र क्या यहीं के बने हैं?'' मालूम हुआ कि सभी कुछ सत्र का ही है, वहीं की गायों का दूध, वहीं की ईख का शक्कर, वहीं के कांस्यकारों के बनाए बरतन, आसन तो वहाँ के थे ही। बुनाई असम की प्रत्येक गृहस्थी में अनिवार्य रूप से होती है और सुंदर होती है। मैंने कारीगरी की प्रशंसा की। मुँह–हाथ धोकर हम गोसाईंजी के सामने उपस्थित हुए दाहिनी ओर मेरे लिए चौकी पर आसन पहले से मिला था और शिष्य–समुदाय भी बैठा था–पचास–एक ब्रह्मचारी।

शिष्टाचार के बाद गोसाईं ने मुख्त्यार की ओर उन्मुख होकर पूछा कि क्या में असमिया समझता हूँ? मैंने सीधे हिंदी में निवेदन किया कि अधिकार असमिया या संस्कृत में बात करें, मैं समझ लूँगा और मेरी हिंदी भी शायद यह समझ ही लेंगे। उन्होंने पूछा कि क्या आपने असमिया पढ़ी है? मैंने कहा–''नहीं, लेकिन जितनी सुनी है, उससे और हिंदी व बँगला के यत्किंचित् ज्ञान के सहारे समझ लेता हूँ। असमिया हिंदी से ऐसी दूर नहीं है, उच्चारण में भेद न होते तो आसानी से समझ में आ जाती। पढ़ने में अंतर कम हो जाता है।

उन्होंने कहा, ''तब तो आप पढ़ लेते हैं।''

मैंने स्वीकार किया कि बांग्ला लिपि मैं जानता था, इसलिए असमिया पढ़ ही सकता था और शंकरदेव–माधवदेव के जो कुछ भक्ति के गीत मैंने पढ़कर देखें, वे ब्रजभाषा के काफी निकट मालूम हुए। ये 'बड़–गीत' नागरी में छपे हों तो हम सब समझ लें।

उन्होंने प्रसन्न होकर पूछा, ''तो माधवदेव के 'बड़–गीत' आपने पढ़े हैं?''

फिर असमिया वैष्णव संप्रदाय के विषय में बातें होती रहीं। फिर गोसाईं ने कहा, ''यहाँ पर जो परदेशी आते हैं, उनमें ऐसे कम होते हैं, जो हमारे देश और संस्कृति में रुचि रखते हों।'' और एक क्षीण–सी उदासी उनके चेहरे पर दौड़ गई।

मैंने कहा, ''मैं तो देखने और सीखने ही आया हूँ। यों भी मैं जहाँ जाता हूँ, वहाँ के जीवन और परिवेश को समझने का यत्न करता हूँ, फिर असम में सचमुच 'सोनार असम' (सोने का असम 'ओ मोर सोना असम' कई असमिया जातीय गीतों की टेक है) है– भारत के सुंदरतम अंचलों में एक।''

उन्होंने कहा, ''फिर भी हमलोगों को बहुत दुःख नहीं है। यहाँ हमलोग तटस्थ हैं और वैसा ही रहना चाहते हैं। जीवन के प्रवाह में बह जाना ही होता तो हम इस द्वीप पर क्यों आकर स्थापित होते। युद्ध से घिरे देश में जैसे माझुली एक अछूता द्वीप है, वैसे ही जीवन के संघर्ष में धैर्य भी एक अछूता द्वीप है।''

और भी बातें होती रहीं। फिर मैंने अनुमति ली और उठा। सत्राधिकारी ने आशीर्वाद दिया, काकती और मुख्त्यार साथ पहुँचाने आए। राह में एक बड़े ताल में गोसाईंजी का बजरा भी देखा, जो बाढ़ के समय काम आता है और ताल में हुए फूल भी।

द्वार पर पहुँचकर हाथी पर सवार हो रहे थे कि सत्राधिकारी का संदेशा आया। हम रुक गए। संदेशवाहक ने कहा, ''प्रभु ने विशेष आशीर्वाद दिया है और यह चिह्न भेजा है।''

मैंने देखा, एक बड़े थाल में काँसे के दो सुंदर पात्र देखकर पहचाना, इन्हीं में मुझे जलपान दिया गया था।

मैं क्षण–भर लज्जा और संकोच से गड़ गया। यह तो फिरंगी अधिकारियों का सभ्य लूट का तरीका रहा कि जो वस्तु हथियाना चाहा, उसकी विशिष्ट प्रशंसा कर दी। मालिक ने इशारा समझ लिया कि और वस्तु भेंट दी। मैंने कहा, ''गोसाईं को मेरी ओर से बहुत–बहुत धन्यवाद दें, किंतु यह उपहार में नहीं लूँगा। मैंने इन पात्रओं की प्रशंसा इसलिए की थी कि लोक–शिल्प में मुझे रुचि है और ये उसके अच्छे नमूने हैं, बल्कि मैं तो कांस्यकारों में भी मिलना चाहता।''

लेकिन यह तो अनहोनी बात है कि प्रभु का प्रसाद कोई लौटा दे। काकती ने कहा–''नहीं, प्रभु ने कहा कि हम भेंट से प्रसन्न होकर ही यह देते हैं, ताकि हमारी स्मृति रहे। आप इसे स्वीकार करें, संकोच करने की बात नहीं है। प्रसाद न लेना असंभव है।''

गड़ामूर का सत्र सबसे उदास लगा, किंतु उस उदासी में भी जीवन था, यह अनुभव करते देर न लगी। गड़ामूर के सत्राधिकारी और उनके पुत्र दोनों नजरबंद हैं, यह मैं जानता था। इसीलिए उस सत्र में जाने को और भी उत्सुक था। धार्मिक दृष्टि से दक्षिणपाट के सत्र का गौरव भले ही ऊँचा हो, साधारण असमिया की दृष्टि में गड़ामूर का एक विशिष्ट स्थान था राजनीतिक जागृति में यह सत्र सबसे आगे रहा और सन् 1942 में यह सरकार का और स्थानीय अधिकारियों का विशेष रूप से कोप–भाजन बना। पं. जवाहरलाल नेहरू जब असम गए तो माझुली में गड़ामूर के ही अतिथि हुए थे और वहाँ के गोसाई अपनी सज्जनता, उदारता और विद्वत्ता के कारण जनप्रिय थे।

सन् 1942 के अगस्त आंदोलन के बाद ही गोसाईं को और फिर उनके युवा पुत्र को नजरबंद कर लिया गया। तब से अधिकारी गड़ामूर के नाम से ही भड़कते थे। यह सब मैं माझुली जाने से पहले जानता था। अधिक जानना भी चाहता था, कुछ कहना भी चाहता था, इसीलिए पहले से ही निश्चय कर रखा था कि और चाहे जो देखें या न देखें गड़ामूर अवश्य जाऊँगा। जोरहाट में एक–आध जगह इस बात का उल्लेख करने पर वहाँ के पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने कान खड़े करके पूछा था, ''क्या करने? साथ में बंदूक–बंदूक कुछ रखते हो कि नहीं?'' और मेरे हँसकर 'ना' करने पर कंधे कुछ ऐसे ढंग से उचकाए थे कि 'तुम्हें भाड़ में
पड़ना हो तो पड़ो, पीछे यह न कहना कि तुम्हें सावधान नहीं किया गया था। इसलिए गड़ामूर के विषय में और भी कौतूहल था।

खैर, कमलाबाड़ी से सड़क–सड़क तीन मील पैदल चलकर नक्शे के अनुसार एक पुल के आगे से बाएँ हाथ को मुड़ने वाली कच्ची सड़क पकड़ी। रास्ता साफ–सुथरा था, बीच में घास के पतले–लंबे डोरे पड़े हुए थे। लगभग आधा मील जाकर सड़क कुछ लड़खड़ाने लगी, एक–आध टूटा पुल पड़ा, जिसे खाल के आर–पार ताल के स्तंभ डालकर काम चलाऊ बना लिया गया था, फिर सड़क एक कच्ची पटरी बन गई। मैंने जान लिया कि हम लोग गड़ामूर सत्र की जमींदारी में आ गए।

सामने कुछ आबादी देखी। मैंने राह के एक ओर बचकर निकलते हुए एक व्यक्ति से पूछा, ''यही गड़ामूर है?''

उसने एक बार सिर से पैर तक मुझे देखा। मैं वर्दी पहने था, केवल टोपी इच्छापूर्वक पीछे छोड़ आया था और पैरों में पेशावरी चप्पल थे, ताकि घरों में जाते समय जूता खोलने–पहनने की सुविधा रहे।

थोड़ी देर सोचते–से रहने के बाद उसने रुखाई से कहा, ''हाँ।''

''गोसाईं–घर का रास्ता कौन सा है?''

उसकी रुखाई और सजग हो गई। उसने एक बार घूरकर मुझे देखा और चुपचाप आगे चल पड़ा, उत्तर नहीं दिया।

मेरा माथा ठनका। असमिया जो हो, अशिष्ट कभी नहीं होता। यह चुप्पी केवल अशिष्टता नहीं, विरोध है, क्यों?

आगे बढ़ा। वहाँ एक दुकान के सामने तीन–चार व्यक्ति खड़े बातें कर रहे थे। मैंने रुककर उनसे पूछा, ''गोसाई–घर का रास्ता किधर है?''

हठात् सन्नाटा। तीनों–चारों आदमी बिना उत्तर दिए बिखर गए। विरोध का रूप स्पष्ट होने लगा। मैंने दुकानदार से पूछा। उसने कुछ इधर–उधर करके कहा, ''खोज लो।''

पीछे सुना, वे तीन–चार व्यक्ति कुछ दूर पर आपस में बात कर रहे हैं। एक ने धीरे से कहा, ''मुख्त्यार को खबर करनी चाहिए।'' मैंने सुन लिया। मुड़कर कहा, ''हाँ, आप लोग मुख्त्यार को खबर कर दीजिए कि दूर देश से एक बंधु मिलने आया है।''

वे मेरे असमिया समझ जाने पर चौंके। फिर इधर–उधर चले गए। मैं भी यों ही एक ओर चल पड़ा। सोचा, भटकते हुए गोसाईं–घर के आसपास भी कहीं पहुँच गया, तो पहचानने में मुश्किल न होगी।

थोड़ी देर में एक व्यक्ति मेरे पास आ गया और बोला, ''आप कहाँ जाना चाहते हैं?''

वह स्वयं मुझसे बोला है, अटकल लगाकर मैंने कहा, ''आपनि मुख्त्यार?''

मैंने मुड़कर देखा। कुछ उस व्यक्ति के ढंग से और कुछ इस बात से कि उसने चौंककर कहा, ''हाँ।''

मैंने अपना परिचय दिया। उसने भी कुछ बाध्य से हो गए होने का भाव दिखाकर नाम बताया।

मैंने कहा, ''मैं गड़ामूर देखने आया था। गोसाईं की प्रशंसा मैंने बहुत सुन रखी है।''

उसने तमककर कहा, ''देखिए, गड़ामूर गरीब है। यहाँ अब कुछ वहीं बचा। गोसाईं जेल में हैं, आपको मालूम होगा। देखने को क्या है?''

''आप सब लोग। गोसाईं होते तब तो और बात थी, अब तो आप लोगों से मिलना ही जरूरी है। कुछ आपकी बात सुनूँगा, कुछ अपनी कहूँगा। दूर उत्तर भारत से आया हूँ, यहाँ के लोगों से भाईचारा रखना चाहता हूँ।''

उसने तनिक पसीजकर, किंतु फिर भी अविश्वास के साथ कहा, ''हमलोगों से आप बड़े आदमियों का क्या मेल? आप क्या काम करते हैं?''

मैंने बताया कि ''मैं फौज में हूँ, पर जिस विभाग में हूँ, उसका मुख्य उद्देश्य है–लोकसंपर्क स्थापित करना।''''क्यों? हमसे तो सेना का कोई मतलब नहीं निकलेगा!''

'आपसे सेना का नहीं, सेना से आपका मतलब सिद्ध होना चाहिए। जिस सेना के पीछे जनता की सदिच्छा नहीं हो, वह जीतकर भी हारती है। जीत वह है, जिसे आपलोग अपनी जीत मानें।''

उसने तनिक और पसीजकर कहा, ''भाल कठा (ठीक बात है)।''

हमलोग धीरे–धीरे एक ओर बढ़े जा रहे थे। मुख्त्यार ने रुककर कहा, ''यहाँ बैठिए थोड़ा।''दाहिनी ओर उसके घर का आँगन था। हम बेंच पर बैठ गए।

मुख्त्यार ने एक लड़के को पुकारा और कहा, ''खबर कर दो।'' किसको क्या खबर, यह नहीं कहा गया। पर लड़का घर की ओर मुड़कर बाहर चला, तो मैंने समझ लिया कि खबर चाय के लिए नहीं, पंचायत के लिए की जा रही है।

मैंने कहा, ''अगर आप लोगों को बुला रहे हैं, तो नाम–घर में ही क्यों न चला जाए?''

मुख्त्यार ने मेरी ओर देखकर कहा, ''आप हमारे देश की प्रथाओं से परिचित जान पड़ते हैं।'' असम में हर गाँव में एक नाम–घर होता है, जहाँ कीर्तन भी होता है और गाँव के सार्वजनिक कार्यों के लिए सम्मिलनी भी जुटती है।

मैंने कहा, ''सीख रहा हूँ।''

पंचायत में लगभग दो घंटे विचार–परिवर्तन हुआ। मुख्त्यार बंगला भी जानते थे, दो–एक व्यक्ति मामूली अंग्रेजी भी। हिंदी–बांग्ला–असमिया अंग्रेजी में बातचीत होती रही। पहला ही प्रश्न मुझसे पूछा गया कि मेरे पास बंदूक या पिस्तौल है? मैंने कहा, ''नहीं।'' तो पूछा गया कि अवश्य ही डाकबंगले में रखी होगी ? मैंने फिर इनकार किया और कहा कि मेरा काम तो केवल बंधु–भाव बढ़ाने का है और मेरे विभाग का उद्देश्य भी ऐसा ही है। एक ने कहा, ''लेकिन बंदूक रखने में बुराई क्या है? आत्मरक्षा के
लिए तो रखी जा सकती है?''

''हाँ, कभी जरूरत हो सकती है, लेकिन आपलोगों के मध्य में क्यों? यहाँ तो आप सब मेरे रक्षक हैं।''

किसी ने कहा, ''भाल कठा।''

और किसी ने कहा, ''जो बंधु–भाव से आया है, यह मिल्टरी है तो क्या, वह हमसे बंधुत्व ही पाएगा।''

पंचायत सफलतापूर्वक समाप्त हुई।

फिर मुख्त्यार के यहाँ नारियल के लड्डू और मठरी के साथ चाय–पान करके, सूना गोसाईं–घर आदि देखकर मैं चलने को उठा। बहुत–से लोग ग्राम–सीमा तक छोड़ने आए। दो युवक पहुँचाने चले, जो लौटते हुए दोनों साइकिलें भी ला सकेंगे मेरे बहुत मना करने पर भी पैदल लौटने की अनुमति मुझे न मिली।

चला तो मुझे फिर आने का निमंत्रण दिया गया। मैंने कहा, ''अवश्य आऊँगा। इसीलिए नहीं कि आपलोगों का स्नेह मिला है, इसलिए भी कि आपसे जो कुछ सुनने को मिला है, उसकी पड़ताल करनी होगी, फिर आकर आपको बताऊँगा कि मैं क्या कर सका हूँ या आपको क्या करना चाहिए।''इस बात के पीछे इतिहास है, जिसका कुछ स्पष्टीकरण उचित है। पूरी बात न तो प्रासंगिक ही है, न प्रकाशनीय ही, क्योंकि अपने काम के सिलसिले में कई बातें जानी–सुनीं गोप्य थीं और जिनका गोपन अब अनावश्यक भले ही हो, प्रकाशन विधि–मर्यादा के प्रतिकूल तो है ही। फिर भी कुछ ब्योरा दिया ही जा सकता है।

सन् 1942 के अगस्त आंदोलन के बाद गहामूर अधिकारियों का कोप–भाजन बना, यह तो ऊपर बता चुका हूँ। इन अधिकारियों में मुख्य था जोरहाट जिले का तत्कालीन अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर, जिसने गड़ामूर गोसाईं के प्रश्न को व्यक्तिगत प्रश्न बना लिया था। गड़ामूर सत्र पर उसकी अकृपा ने सत्र के शिष्य–मात्र को सताने के निश्चय का रूप ले लिया था। यह कैसे किया जा रहा है, यह पंचायत में मुझे बताया गया था, किंतु तब मैं विश्वास न कर सका, क्योंकि मेरी यह धारणा थी कि अंग्रेज का दमन सदा वैध होता है, वह नृशंस भी होता है तो उसकी नृशंसता कानून की माँग का जामा पहनकर आती है, नंगी कभी नहीं होती। इसके अपवाद व्यक्ति हो सकते हैं, किंतु साधारणतया यह अंग्रेज चरित्र की विशेषता है और अंग्रेजी शासन की तो है ही। (यह धारणा मेरी अब भी है।) किंतु माझुली से लौटकर जोरहाट में मुख्त्यार ने मुझे जो सरकारी दस्तावेज दिखाए और डिप्टी कमिश्नर से मिलने पर उसका जो रवैया रहा, उससे मैंने समझ लिया कि गड़ामूर वालों की बात ठीक है और उसे यों ही छोड़ देना एक नैतिक पाप होगा, किंतु उपाय कैसे हो सकता है, यह मुझे आसानी से न सूझता, अगर डिप्टी कमिश्नर ही मुझसे चिढ़कर, 'एक अनुभवहीन पल्टनिए के सिविल शासन में अनधिकार हस्तक्षेप' की दुहाई देकर ऊँचे अधिकारियों तक न पहुँचते और जाँच में युद्ध–विभाग का पूरा समर्थन मुझे न मिलता। इस्तीफा देना नैतिक विरोध है अवश्य और ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं, जहाँ कहीं ठीक अथवा एकमात्र उपाय होता है, किंतु यहाँ यह बात नहीं थी, नहीं तो इसलिए कि उससे स्थिति रत्तीभर बदलती और गड़ामूर को तो कोई सुविधा न होती।

अस्तु वस्तुस्थिति यह थी कि गड़ामूर सत्र की अपनी जो राशन की दुकान थी, उसे जिलाधीश ने इसलिए बंद कर दिया था कि उसका संचालन संतोषजनक नहीं है, किंतु उसके बाद सत्रवासियों को राशन की किसी दुकान से सम्बन्ध नहीं किया गया था, न सत्र के लिए ही राशन की स्वीकृति दी गई थी। (दूसरे हर सत्र को व्यक्तियों के निजी राशन के अतिरिक्त सत्र के लिए विशेष राशन मिलता था।) आज्ञा में यह अवश्य लिखा था कि 'सत्र–निवासियों की सत्र के बाहर की किसी दुकान से राशन खरीदने की मनाही नहीं है, किंतु दुकानों को तो मनाही थी ही कि उनसे संबद्ध व्यक्तियों को छोड़कर और किसी के हाथ राशन न बेचें और उन्हें बेचने के लिए माल दिया भी जाता था उसी परिमाण में। एक दूसरी आज्ञा में स्पष्ट लिखा गया था कि 'केवल सत्र का राशन बंद किया गया है, उसकी सीमा से बाहर बसने वाले अथवा उसके अनुशासन से स्वच्छंद व्यक्ति अमुक–अमुक स्थान से राशन ले सकेंगे।

धान और मकई तो सत्र अपनी उपजाते थे। चीनी के बिना भी रहा जा सकता था, किंतु नमक, तेल और घासलेट?

और एक दिन मैं गड़ामूर गया था। मलेरिया और जूड़ी, पेचिश और मियादी बुखार से बहुत–से लोग पीड़ित थे। कोई घर ऐसा न था, जिसमें एक रोगी न हो। साँझ हो गई थी, जिस–जिस घर में मैं देखने जाता, गृहस्वामी या कोई व्यक्ति थोड़ा–सा सूखा पुआल उठाकर मुट्ठा बनाते और सुलगा कर प्रकाश कर देते। उसी प्रकाश में मैं रोगी का चेहरा देख लेता और दो बातें कर लेता, फिर अंधकार हो जाता और थोड़ी देर में हमलोग बाहर आ जाते। दूसरे घर में फिर इसी की आवृत्ति होती।

माझुली द्वीप की 22–24 हजार की आबादी (और अधिक नहीं तो 100 वर्ग मील क्षेत्रफल) के लिए केवल एक सरकारी दवाखाना है, जिसे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से दो सौ रुपए वार्षिक सहायता मिलती है। पड़त फैलाकर देखें तो गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य पर लगभग पौने दो पाई खर्च होता है या यों कहें कि मलेरिया से बचने या मुक्त होने के लिए व्यक्ति कुनैन की एक खुराक का एक चौथाई अंश साल में एक बार पा सकता है।

प्रणाम है उस सत्र को और ग्राम को, जो न झुका, न झुका, न झुका।

कमलाबाड़ी से कोकिलामुख लौटते तूफान ने घेर लिया, दिन छिपते पहुँचे। पैसेंजर बस भर चुकी थी (और ऐसे स्थानों में 24 सीट की गाड़ी तब भरती है, जब 32 बैठ चुके हों)। कहने–सुनने पर ड्राइवर ने मुझे ले लिया और अपने दाहिनी ओर बिठा लिया। मनदोज के सामान के साथ (केवल अपना बिस्तर मैंने साथ रखवा लिया) बैलगाड़ी पर आने को कहा। रात जोरहाट काटी, दूसरे दिन सामान आ जाने पर दो किस्तों में बस द्वारा वोकाखाट। यहाँ से आगे बस नहीं थी। आती–जाती मिलिटरी लारियों में चड्डी लेते हुए रात तक नौगाँव पहुँच गए। यहाँ अपना ट्रक मुझे लेने आने को था। यहीं तीन सप्ताह की डाक और समाचार–पत्र मिलने की आशा थी। सब मिले, किंतु इस वरदान का आराम से भोग करने बैठूँ इससे पहले ही यह सब लेकर आए हुए मेरे विभाग के एक अफसर ने कहा, ''कुछ और भी सामान तथा कमांडर की एक चिट्ठी भी तुम्हारे लिए लाया हूँ। तुम्हें अभी केंद्र नहीं लौटना है, यहीं से दूसरा दौरा आरंभ है– मणिपुर रोड।''

''क्यों, खैर तो है?'' कहते हुए मैंने कर्नल की चिट्ठी खोली।

''पूरे समाचार तुम्हें इस (पत्रवाहक कप्तान का पुकारने का नाम) से मालूम होंगे। मणिपुर रोड से लेकर उत्तरी शिवसागर तक का सारा प्रदेश तुम्हारे जिम्मे है। कुछ खाद्य, एक–एक बोतल रम और जिन, एक रिवॉल्वर और 150 कारतूस भेज रहा हूँ और सभी चीजों का उदारता से, कारतूसों का किफायत से उपयोग करना। कुछ और मँगाना हो तो एब से कह देना और ठिकाना बता देना। अगले सप्ताह में एक हवलदार तुम्हारे साथ रहने को भेजूँगा, वह लेता जाएगा। पीछे मैं भी आ मिलूँगा। संपर्क रखना, गुडलक।''

पत्र के साथ ही उससे भी संक्षिप्त पट्टा (मूवमेंट ऑर्डर) था, जिसके अनुसार मुझे मणिपुर रोड और डिगबई तक के प्रदेश में जहाँ–तहाँ चाहूँ, जाने और मौखिक आदेशों के अनुसार कार्य करने की अर्हता प्रदान की गई थी और स्थानीय कमांडरों को मेरे कार्य में योग देने को कहा गया था। मैंने एब स्टुअर्ट से कहा, ''यह बात!'' और अखबार उठाया। सुर्खी चीख रही थी, ''भारत का सीमोल्लंघन जापानियों ने मणिपुर का रास्ता काट दिया–कोहिमा का आसन्न संकट।''

मैंने फिर कहा, ''अच्छा यह बात!'' और उनकी बात सुनते–सुनते उनके साथ ही नक्शों पर झुक गया।

अगले छह सप्ताह तक माझुली का स्मरण करने की फुरसत न मिली। उसके बाद एक गाँव के स्कूल में एक बच्ची से अचानक केवड़े के फूल का उपहार पाकर मुझे माझुली के यात्रारंभ की याद आई, तब नागकेसर और अशोक–दोनों ही के फूल लुप्त हो चुके थे और हर समय छाए रहने वाले बादलों के नीचे उनकी घनी हरियाली तथा काली काली दीखने लगी थी।

कविताएं

पहचान

मुझे कवि जैसा चेहरे वाला
दिखा एक युवक
होटल में चाय पीते हुए
जान सकते हैं यदि चाहें
मुश्किल है व्याख्यायित करना
लेकिन थोड़े बड़े–बड़े बाल
छोटी–सी दाढ़ी तराशी हुई
सक्रिय हर क्षण... कभी बुदबुदाता, कभी खामोश
आकर्षण की हद में करता गिरफ्तार
जो शायद दूसरा कवि ही कर पाता है लक्ष्य

क्या इतना ही या ऐसा ही
व्यक्तित्व बनाता है किसी को कवि
यदि होता यह तो सारे गुंडे भी होते यही
ये मात्र बाहरी संभावनाएँ
भीतर का पता जानने कोई अंतर्यामी मैं नहीं
पर उसकी सूरत की वे सारी सलवटें, वे हाव–भाव
धोखा नहीं न दे सकती वह सुंदरता
अंदर से जो होती प्रकट
संवेदित मन का प्रतिबिम्ब
वह मृदुलता, वह भावुकता, अर्थात्मकता और अंतरंगता
हो सकती है कवि में जो आ जाती है अंर्तदृष्टि की पकड़ में
फिर भी मैं नहीं आश्वस्त कि वह
कवि है या होगा भी कभी।

हवा

हवा है
चल रही है
चलेगी ही
चलने दो
क्योंकि हवा के
और भी लक्षण हैं
चलते–चलते तूफान में
तब्दील हो जाती है
पता नहीं–कब, कैसे?
विशालकाय वृक्ष
पलक झपकते
देगी उखाड़
जो साम्प्रदायिक जड़ों से
खुद को महफूज पा रहे हैं

वह सुनामी का रूप
कभी भी धारण कर
ऊँची–ऊँची लहरों से
किनारे की सारी
धर्मतंत्र अनुगामी बस्तियों को
पल भर में
कर देगी नेस्तनाबूद

समय किसी को भी
नहीं बख़्शता
झूठ–लफ्फाजी का कछुआ
कितना भी अपना बाहरी
मज़बूत कवच से
होता रहे खुश
उसकी बाहर निकली
तिकड़मी थूथनी को
सच की बड़ी मछली पकड़ ही लेती है
अपने जबड़े में !

अशोक गुजराती
नवी मुंबई–410 210.
मो.– 9971744164

समीक्षा

किरण कोहरा (काव्य संग्रह)

रवि कुमार

सद्य समीक्षित पुस्तक 'किरण कोहरा' सेवानिवृत हिन्दी प्रवक्ता सुषमा खजुरिया की छठी प्रकाशित पुस्तक है जिसमें जीवन के विविध क्षेत्रों में लेखनी चलाने का एक सौ कविताओं के माध्यम से समुचित प्रयास किया गया है।

उनके प्रकाशित रचना संसार में दो उपन्यास–'चप्पा धूप', 'चीत्कार', एक कहानी संग्रह 'कारुणिक' एक लेख संग्रह 'मानवता कराह उठी' पाठकों द्वारा सराही जा चुकी है।

अनेक साहित्य सम्मानों से अलंकृत लेखिका की छन्दमुक्त रचनाओं में लयबद्धता व गेयता देखते ही बनती है। प्राक्कथन में अनिल कुमार खजुरिया ने इस पुस्तक को जीवन के विभिन्न रंगों का गुलदस्ता तथा चिरसंचित अनुभवों का सार माना है।

सागर प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित इस पुस्तक का मुख कवर पृष्ठ व अंतिम कवर पृष्ठ अत्यन्त आकर्षक हैं। पुस्तक के श्रीगणेश में कमलासन पर विराजमान माँ शारदा का रंगीन चित्र बड़ा ही मनमोहक है। गणपति गजानन व सरस्वती वंदन जैसी धार्मिक आस्था से ओत–प्रोत कविताओं से काव्य–संग्रह का शुभारम्भ श्रेयस्कर प्रतीत होता हैं।

छः ऋतुओं वाला देश, वीर प्रताप, वीर सैनिक, मराठा शिवाजी की रचनाएँ देशभक्ति की सीख देती हैं।

सबला, बेटियाँ, नारी, नदी, प्रतीक्षा, वीरांगणा, कन्या भ्रूण–हत्या जैसी रचनाएँ महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने वाली है। वसन्त, किरणकोहरा, भीतरी आकाश, नैसर्गिक सुषमा, सावन के झूले, अनिल आदि प्रकृति चित्रण का अनूठा संगम है।

प्रिय पंजाब, प्रिय जालंधर कविताएँ बचपन की अविस्मरणीय यादगार को समर्पित हैं।

धरतीपुत्र किसानों, माँ महिमा, धार्मिक पर्वों, वेद–पुराणों, चन्द्रयान–3 की सफलता से प्रेरित रचनाएँ भी अच्छी बन पाई हैं।

पुरखों की सीखों को अपनाते हुये नशा त्यागकर नैतिक मूल्यों को अपनाते हुए निःस्वार्थ समाज–सेवा की राह दिखाती कलम भी नवयुग की भोर लाने का संदेश देने को आतुर प्रतीत होती है।

इंटरनेट के युग में पुस्तक : पठन–पाठन संस्कृति को अपनाने की सीख, सादा जीवन उच्च विचार का मूल मंत्र, साम्प्रदायिक सद्भाव, मानवीय संवेदनाओं का ह्रास भी रचनाओं के मूल में निहित है।

लेखिका की कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण, रहस्यवाद, बालमन की इन्द्रधनुषी छटा है। कभी लेखिका का मन समाज की संकीर्ण सोच पर व्यथित है, तो कहीं वीरों–वीरांगनाओं के अनूठे कार्यों पर प्रफुल्लित है। काव्य–संग्रह का शीर्षक 'किरण कोहरा' सटीक प्रतीत होता है जो इसी काव्यसंग्रह की पृष्ठ 27 पर प्रकाशित कविता 'किरण कोहरा' से लिया गया है।

किरण का कार्य प्रकाश फैलाकर कोहरे रूपी अंधकार को मिटाना है। निम्न पंक्तियों की बानगी तो देखिए–

''रातभर कोहरा खोजता रहा
सूर्य की प्रथम किरण को
उसका पसीना ओस बन बहता रहा
ओस बूँदे हरियाली स्पर्श पाकर,
मोती बन गयीं।''

इस संग्रह की कविताएँ काव्यात्मकता को गहराई से समझने में मदद करती है। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की अवधारणा को अपनाने को आतुर मनु की वाणी का शब्द विधान ही कविता है। कवयित्री के श्रम व पुस्तक की प्रकाशन गुणवत्ता के मध्यनज़र इसका मूल्य केवल मात्र तीन सौ सतहत्तर रुपये सर्वथा उचित प्रतीत होता है। समीक्षक के अनुसार पुस्तक पाठकों के लिए रोचक व संग्रहणीय साबित होगी।

लेखिका सुषमा खजुरिया
विजयपुर, बिलासपुर (हि.प्र.)

कविताएं

श्रीगोपाल नारसन,
हरिद्वार,
मो. : 9412072417

दिनचर्या

तारीख, महीना, साल बदल जाते हैं
परन्तु नहीं बदलती हमारी दिनचर्या
कलेण्डर बदलने की बधाइयाँ
एक औपचारिकता का एहसास
इसके सिवाए कुछ भी तो नहीं
मनाना ही है अगर नया साल
दिनचर्या में लाये नया बदलाव
किसी का दिल न दुखाने का बदलाव
गैर को अपना बनाने का बदलाव
देश के लिए समर्पण का बदलाव
नारी सम्मान के संकल्प का बदलाव
बुराइयो से मुक्ति का बदलाव
पवित्र संकल्प लेने का बदलाव
आत्मबोध में रहने का बदलाव
प्रभु याद में जीने का बदलाव
जीवन में ये सब बदलाव लाइए
शान से नए साल का जश्न मनाइए

रथेन्द्र विष्णु 'नन्हें'
भागलपुर
9123138580

फिर जलाओ रावण को

एक संदेश है जगत जन को
कब तक जलाओगे रावण को
पावन करो खुद जीवन को
फिर जलाओ तुम रावण को

लाख नहाओ गंगा में तुम
मन पवित्र कैसे होगा
छल, कपट, लोभ मोह से
दूर चरित्र कैसे होगा
पहले दूर करो इस व्यसन को
फिर जलाओ रावण को
हर साल होता रावण दहन
त्रेता से कलयुग तक
रावण का पुतला जलता है
पुनः रक्तबीज बनकर वो
हर व्यक्ति में जन्म लेता है

नाश करो उस दुर्जन को
जो अपने अंदर ही पलता है
जला डालो इस अगन को
फिर जलाओ रावण को
गली–गली और गाँव, शहर
भरे पड़े हैं रावण–सा दुर्जन
कटती नहीं नाक सूर्पनखा की
फिर क्यों होता रोज अपहरण
दूर करो इस दुराचरण को
फिर जलाओ रावण को।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303